मध्यकाल में भ्रष्टाचार

(1206-1707)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

की

डी.फिल. उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-सार

2002

शोध-निर्देशक

श्री योगेश्वर तिवारी

रीडर-मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्ता

राकेश कुमार

मध्यकालीन इतिहास

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोध सार

मध्य काल में भ्रष्टाचार
(1206-1707)

इतिहास का अर्थ सम्राटों की जीवनगाथा अथवा उनके द्वारा सम्पन्न संग्रामों का अध्ययन करना ही नहीं बल्कि इतिहास का अर्थ अतीत के उन लुप्त तथ्यों को उद्घाटित करना है, जिनकी प्रासंगिकता वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतिहास का तात्पर्य उन उत्कृष्ट तत्वों का प्राकट्यीकरण है जो सामाजिक संरचना सांस्कृति मूल्यों एवं जीवन के उच्चादर्शों को निर्धारित कर विभिन्न व्यवस्थाओं को जन्म देते हैं।

विभिन्न वंशों और व्यवस्थाओं के परिवर्तन से सामाजिक जीवन अप्रतिम रूप से प्रभावित होता रहा और शनैःशनैः एक परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न होती है। परन्तु जब यह परिवर्तन की गति असाधारण रूप से तीव्र हो जाती है, तब क्रांति का प्रस्फुरण होता है जिसके परिणामस्दरूप समाज, राष्ट्र, परिवेश तथा संस्कृति में आमूलभूल परिवर्तन होता है और इसी परिवर्तन का विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करना ही इतिहास कहलाता है। वस्तुतः इतिहास की सीमाएं इतनी व्यापक हो जाती है कि उनमें मानव समाज की धारा के परिवर्तन एवं परिवर्धन को प्रभावित करने वाले समस्त तत्व सम्मिलित हो जाते हैं।

भारत अपनी विशालता एवं आर्थिक समृद्धता के कारण प्राचीन काल से ही विदेशी आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। भारतीय समाज ने भारत में प्रवेश करने वाली अनेक विदेशी जातियों को अपने अन्तर्गत आत्मसात करने का यथाशक्ति प्रयास किया। परन्तु अति प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं समाज में निरन्तरता, गतिशीलता एवं परिवर्तनशीलता के तत्व अनेक संघातों के बावजूद भी निरन्तर बने रहे।

पूर्वमध्य काल में मुसलमानों के भारत आगमन के प्रथम प्रवाह में ही दिल्ली के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अनेक परिवर्तनशील तत्वों का उदय हुआ जिसके परिणामस्वरूप एक नवीन हिन्दू–मुस्लिम मिश्रित समाज अथवा नव भारतीय समाज की नींव पड़ी। यह परिवर्तन सर्वाधिक दिल्ली में ही दृष्टिगोचर हुआ। क्योंकि सल्तनत कालीन शासकों ने दिल्ली को राजधानी के रूप में स्वीकार करके उसे विशेष गरिमा प्रदान की। सुल्तान ने वहीं अपने प्रसाद बनवाये तथा विभिन्न शासकों ने अपने–अपने ढंग से दिल्ली को सुसज्जित करने का प्रयास किया। एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की स्थापना की गयी। हालांकि सम्पूर्ण मध्य काल में समय–समय पर मुस्लिम शासकों ने शासन में सुधार हेतु आवश्यक कदम उठाये और सदैव यही प्रयास किया कि शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार का कोई स्थान न हो लेकिन कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर औरंगजेब तक व्यापक प्रयासों के बावजूद भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जा सका।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "मध्य काल में भ्रष्टाचार (1206–1707) में राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार की स्थिति का अत्यन्त रोचक व साधिकार वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त बिन्दुओं को दृष्टि में रखते हुए शीर्षक "मध्यकाल में भ्रष्टाचार" (1206–1707) शोध निबन्ध में मध्यकाल भारतीय इतिहास में भ्रष्टाचार की क्या स्थिति थी, उसका स्वरूप कैसा था और उसने मध्यकाल में विभिन्न वंशों और शासकों के उत्थान एवं पतन में क्या भूमिका निभाई? क्या शासकों ने भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का प्रयास किया और उसमें कहाँ तक वे सफल हो सके आदि का विस्तृत विवरण एवं विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। "भ्रष्टाचार" शब्द भारतीय इतिहास में अत्यन्त प्राचीन है और "भ्रष्टाचार" के लिए "उत्कोच" शब्द का प्रयोग किया गया है। चाणक्य ने "उत्कोच" शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए उसे अति दण्डनीय अपराध बताया है। इसमें ज्ञात होता है कि भ्रष्टाचार किसी न किसी रूप में भारत में सदैव ही रहा चाहे उसका स्तर कभी कम या अधिक रहा हो। लेकिन मध्यकाल में भ्रष्टाचार की सीमाओं में वृद्धि हुई और न केवल शासक वर्ग बल्कि उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग सहित समाज का विभिन्न वर्ग इसमें प्रभावित हुए बिना न रहा। इस तथ्य को समकालीन मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लेखकों, यथा– जियाउद्दीन बरनी, इसामी शम्ससिराज अफीफ, जौहर आफताबची अब्बास खान सरवानी, अबुल फजल और

बाबर तथा जहाँगीर की कृतियों के अध्ययनोपरान्त सहजता से उद्घाटित होता है। चाहे वह इल्तुतमिश का तुर्कानि चहलगानी हो या अलाउद्दीन की बाजार नियंत्रण नीति या शेरशाह के विभिन्न सुधार हो या औरंगजेब के विभिन्न कड़े प्रतिबंध आदि में भ्रष्टाचार और उस पर नियंत्रण के प्रयासों का पर्याप्त विवरण उपलब्ध है। इससे जहां एक ओर यह तथ्य प्रकट होता है कि मध्यकालीन शासकों ने समय–समय पर भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कठोर कदम उठाये वहीं यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि मध्यकालीन शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार आम जनता में भी अपनी जड़ें गहराई तक जमा चुका था। यहां तक कि इस तथ्य के भी अनेक उदाहरण मध्यकालीन इतिहास में मिलते हैं, जब रिश्वत लेकर "किलेदार" ने पूरा का पूरा किला ही विपक्षी को, विद्रोहियों को सौंप कर राज्य के साथ विश्वासघात किया। इस प्रकार के उदाहरण मुगल काल में विशेषकर औरंगजेब के शासनकाल में मुगल–मराठा संघर्ष और मुगल–राजपूत संघर्ष व मुगल गोलकुण्डा और बीजापुर संघर्ष के दौरान बड़ी संख्या में मिलते हैं।

भारत वर्ष में तुर्की शासन सन् 1206 ई0 में स्थापित हुआ। इन तुर्कों को इल्बारी तुर्क भी कहते हैं। यह वंश 'गुलाम वंश' के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु यह नामकरण भ्रान्तिपूर्ण है। क्योंकि इस वंश के प्रमुख शासकों ने गद्दी पर बैठने के पूर्व ही गुलामी से मुक्ति पा ली थी। इस प्रकार इन्हें 'गुलाम वंश' न कहकर 'इल्बारी' या 'मामलुक' वंश कहा जा सकता है। इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण

शासक इल्तुतमिश को माना जाता है जिसने चालीस अमीरों के एक दल का भी गठन किया था जिसे तुर्कान–ए–चलगानी कहा जाता है। इसी ने सर्वप्रथम गुलाम वंश में मुद्रा चलाने का कार्य किया था। इसी कारण इल्तुतमिश को गुलामवंश का सार्वभौम संस्थापक माना जाता है। इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत को नवजीवन प्रदान किया तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिए विरासत में एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित साम्राज्य छोड़ गया। सन् 1236 ई0 में इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त रजिया गद्दी पर बैठी। इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम परम्परा से हट कर अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था, क्योंकि रजिया ही उसके पुत्र–पुत्रियों में सर्वाधिक योग्य थी, अर्थात् योग्यता के आधार पर रजिया की नियुक्ति हुई और उस समय उसके दरबारियों ने इल्तुतमिश के इस कार्य का समर्थन किया था। किन्तु इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त वे रजिया के विरूद्ध षड्यन्त्र करने लगे और अन्त में सन् 1240 ई0 से एक षड्यन्त्र के द्वारा रजिया को पदच्युत कर उसका वध करवा दिया गया। उत्तर भारत में सम्भवतः मध्ययुग में यही प्रथम और अन्तिम उदाहरण है, जबकि एक स्त्री को शासिका के रूप में गद्दी प्राप्त हुई, किन्तु सरदारों ने उसकी सत्ता स्वीकार नहीं किया। रजिया के पश्चात् बहरामशाह (1240–42 ई0) अलाउद्दीन मसूदशाह (1242–46 ई0) एवं नासिरुद्दीन महमूद (1246–66 ई0) दिल्ली की गद्दी पर बैठे। नासिरूद्दीन के मृत्योपरान्त गयासुद्दीन बल्बन गद्दी पर बैठा। बल्बन ने राज्य और शासक की प्रतिष्ठा में

अभूतपूर्व वृद्धि करने की चेष्टा की और राजत्व के दैवी सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। बल्बन के काल में दिल्ली सुल्तानों का गौरव बढ़ा और साम्राज्य का विस्तार हुआ तथा बल्बन अपने समस्त शत्रुओं का दमन करने में सफल हुआ। बल्बन के मृत्योपरान्त योग्य उत्तराधिकारियों के अभाव में इल्बारी वंश का पतन हो गया।

इल्बारी वंश के पश्चात् सन् 1290 ई0 में खल्जी वंश की स्थापना हुई, जिसने सन् 1290 से 1320 ई0 तक शासन किया। इस वंश का संस्थापक जलालुद्दीन फीरोज खल्जी (1290–96 ई0) था। इसके पश्चात् सबसे विख्यात अलाउद्दीन खल्जी (1296–1316 ई0) ने शासन किया। अलाउद्दीन खल्जी ने भी निरंकुशता के आधार पर शासन किया। अलाउद्दीन खल्जी ने धर्म के राजनीति तथा प्रशासन में हस्तक्षेप को वर्जित कर दिया तथा राजत्व–सिद्धान्त को पुनः सेना व पुलिस के बल पर उच्च धरातल पर स्थापित करने का प्रयत्न किया। अलाउद्दीन का साम्राज्य सुदूर दक्षिण में भी फैल गया। इस साम्राज्य–विस्तार में उसके सुयोग्य तथा कुशल सेनापति मलिक काफूर का सराहनीय योगदान रहा। ऐसे निरंकुश शासन तभी स्थायी रह सकते हैं, जब शासक योग्य व शक्तिशाली हो। परन्तु अलाउद्दीन खल्जी के पश्चात् कोई योग्य उत्तराधिकारी न हुआ। फलतः सन् 1320 ई0 में एक विप्लव के द्वारा गाजी मलिक या गयासुद्दीन तुगलक ने खल्जी वंश का समापन कर दिया तथा तुगलक वंश की स्थापना की, अर्थात योग्यता का मापदण्ड शक्ति ही थी और इसी कारण सल्तनतकाल में वंश–परिवर्तन

होते रहे।

तुगलक वंश ने सन् 1320–1414 ई0 तक शासन किया। इस वंश में गयासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई0), मुहम्मद तुगलक (1325–51 ई0) एवं फीरोजगशाह तुगलक (1351–88 ई0) आदि महत्वपूर्ण शासक हुए। मुहम्मद तुगलक इन सभी सुल्तानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद तुगलक ने भी राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप को वर्जित रखने का प्रयत्न किया। इसी कारण मुहम्मद तुगलक ने प्रारम्भ में खलीफा की मान्यता नहीं प्राप्त किया। जबकि खलीफा की मान्यता समस्त मुस्लिम साम्राज्य के शासकों के लिए आवश्यक थी। मुहम्मद तुगलक की सभी महत्वाकांक्षी योजनाएं जन–प्रचार के अभाव में विफल हो रही थीं, उधर जनता और शासक के मध्य वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। परिणामतः मुहम्मद तुगलक विफल रहा। अन्त में उसने खलीफा से मान्यता प्राप्त करना चाहा किन्तु इसी बीच थट्टा में उसकी मृत्यु हो गई और फीरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। यह प्रजा के हितों को सुरक्षित रखना चाहता था। परन्तु इसके काल में साम्राज्यवादिता के अतिरिक्त धर्म का प्रभाव अधिक था। फीरोज ने बड़ी संख्या में बाग, सराय आदि जन–कल्याण कार्यों का निर्माण करवाया। फीरोज के उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य सिद्ध हुए तथा उनके आपसी संघर्ष ने साम्राज्य को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया। तुगलक वंश के पश्चात् दिल्ली सल्तनत पर सैय्यद वंश का शासन स्थापित हुआ जिसने सन् 1414 ई0 से सन्

1451 ई0 तक शासन किया। इस वंश में क्रमशः निम्न शासकों ने शासन किया–खिज्र खाँ (1414–21 ई0), मुबारक शाह (1421–34 ई0), मुहम्मद शाह (1434–45 ई0) एवं अलाउद्दीन आलम शाह (1445–51 ई0)। सैय्यद वंश का प्रभाव शून्य ही रहा। इसके पश्चात् बहलोल लोदी ने लोदी राजवंश की स्थापना की, जिसने (सन् 1451 इ0 से सन् 1526 ई0 तक) शासन किया। इस अवधि ा में बहलोल लोदी (1451–89 ई0), सिकन्दर लोदी (1489–1518) एवं इब्राहीम लोदी (1518–26 ई0) गद्दी पर बैठे। सन् 1526 ई0 में में पानीपत के प्रथम युद्ध में अन्तिम लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदी को जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने परास्त करके दिल्ली सल्तनत का समापन कर मुगल वंश की स्थापना कर दी। इस प्रकार सन् 1206 ई0 से लेकर सन् 1526 ई0 तक अर्था 320 वर्षों के शासन के उपरान्त दिल्ली सल्तनत का पतन हुआ। यद्यपि सन् 1540 में शेरशाह सूरी ने दिल्ली सल्तनत के द्वितीय राजत्व की स्थापना की सूर वंश स्थापित किया। परन्तु सन् 1556 ई0 में सूर वंश के पतनोपरान्त दिल्ली सल्तनत का सदैव के लिए अन्त हो गया और मुगल साम्राज्य की दृढ़ता से स्थापना हो गई। भारत के इतिहास में दिल्ली सल्तनत का युग सन् 1206 से 1526 ई0 तक ही माना जाता है।

सन् 1526 ई0 का वर्ष मध्यकालीन भारतीय इतिहास में दिल्ली सल्तनत के पतन और मुगल साम्राज्य के संस्थापन का वर्ष था। अकबर के उत्कर्ष ने मुगल

साम्राज्य को वह सुदृढ़ आधार प्रदान किया जिसके कारण ही लगभग तीन सौ वर्षो तक मुगलों ने भारत पर राज्य किया। वास्तव में मुगल साम्राज्य का वास्तविक विकास अकबर के ही काल से प्रभावी रूप से प्रारम्भ होता है जो औरंगजेब के काल तक निर्वाध गति से चलता रहा।

सम्राट अकबर का जन्म 15 अक्टूबर सन् 1542 ई0 को अमरकोट में हुमायूं की नवविवाहिता पत्नी हमीदा बानो बेगम के गर्भ से हुआ था। इस समय हुमायूं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। भारत छोड़ते समय हुमायूँ ने अकबर को अपने भाई अस्करी के संरक्षण में छोड़ दिया। तब से सन् 1515 ई0 में जब हुमायूँ ने पुनः भारत पर आक्रमण किया तो अकबर उसके साथ था और लाहौर विजय के साथ ही हुमायूँ के मृत्योपरान्त फरवरी सन् 1556 ई0 में बैरम खाँ के संरक्षण में कलानूर के निर्जन स्थान पर अकबर को मुगल सम्राट घोषित कर दिया गया। राज्यारोहण के समय अकबर मात्र लगभग तेरह वर्ष का ही था।

नूरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर का जन्म 30 अगस्त सन् 1569 ई0 को शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद स्वरूप हुआ था। जहाँगीर की माँ आमेर के राजा भारमल की पुत्री थी। जहाँगीर की शिक्षा–दीक्षा अब्दुर्रहीम खानखाना के संरक्षण में हुआ और उसने अतिशीघ्र तुर्की, फारसी, संस्कृत आदि विभिन्न भाषाओं पर अच्छा अधिकार स्थापित कर लिया। उसने 'तुज्क–ए–बाबरी' का अनुवाद फारसी में किया तथा इसी प्रकार उसने भी 'तुज्क–ए–जहाँगीरी' नामक ग्रंथ की रचना

की। चित्रकला में उसे विशेष रुचि थी तथा वह स्वयं भी अनेक चित्रों का निर्माता था। चित्रकला की दृष्टि से जहाँगीर का काल स्वर्णयुग था। सन् 1581 ई0 में काबुल में सेना का नेतृत्व जहाँगीर ने किया। इसके पश्चात् भी उसने अनेक युद्धों में भाग लिया। इस प्रकार व्यवहारिक रूप से भी वह सैन्य कला में निपुण हो चुका था। सन् 1599 ई0 में सलीम ने सम्राट अकबर के विरूद्ध असफल विद्रोह उस समय कर दिया जब वह दक्षिणी–अभियान हेतु गया था। सन् 1604 ई0 में जब अकबर ने उसे मेवाड़–विजय करने भेजा तो वह मेवाड़ की ओर न जाकर इलाहाबाद चला गया और विद्रोह कर दिया। अब अकबर ने स्वयं उसे दण्डित करने का निश्चय किया, परन्तु मार्ग में ही अपनी माँ की मृत्यु का समाचार मिलने से वापस लौट आया। अन्त में, सलीम भी आगरा आया और सम्राट से क्षमा माँग ली। सन् 1605 ई0 में अकबर के मृत्योपरान्त जहाँगीर निर्विरोध रूप से मुगल साम्राज्य का सम्राट बन गया क्योंकि इस समय तक अकबर के शेष पुत्र मुराद तथा दानियाल विभिन्न रोगों से ग्रस्त होकर काल–कवलित हो गये थे।

शिहाबुद्दीन मोहम्मद शाहजहाँ (खुर्रम) का जन्म सन् 1592 ई0 में राजपूत राजकुमारी के गर्भ से हुआ था। जहाँगीर ने खुर्रम की शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया था। अतः खुर्रम ने शीघ्र ही अरबी, फारसी, राजनीति, धर्म, भूगोल, इतिहास आदि विषयों का महान अध्ययन कर लिया था। खुर्रम को गहन सैन्य प्रशिक्षण भी प्रदान किया गया था जिसके कारण अल्प आयु में ही खुर्रम की गणना

सर्वश्रेष्ठ मुगल सेनानायकों में की जाने लगी। खुसरों के विद्रोह के साथ ही खुर्रम के उत्थान का काल प्रारम्भ हो गया जो सन् 1622 तक निरन्तर चलता रहा। सन् 1607 ई0 में खुर्रम को 8000 जात/5000 सवार का मनसब प्रदान किया गया। सन् 1608 ई0 में उसके मनसब से वृद्धि कर 10,000 जात/5000 सवार का मनसब बनाया गया। इसी वर्ष नूरजहाँ ने शाही महल में प्रवेश किया और नूरजहाँ, की भतीजी तथा आसफ खाँ की पुत्री अर्जुमन्द बानो से खुर्रम का विवाह हुआ जिससे खुर्रम के प्रभाव क्षेत्र में और वृद्धि हुई। सन् 1621 ई0 तक मेवाड़ और दक्षिण की अपार सफलता ने खुर्रम को सफलता कके सर्वोच्च शिखर पर बिठा दिया। परन्तु सन् 1622 ई0 में जब नूरजहाँ खुर्रम की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर उसका विरोध करने लगी तो उसने विद्रोह कर दिया। परन्तु सन् 1623 ई0 में महावत खाँ और परवेज की संयुक्त सेनाओं से खुर्रम परास्त हुआ और दक्षिण की ओर भागा तथा मलिक अम्बर से शरण माँगी परन्तु शाही सेनाओं के द्वारा निरन्तर पीछा करते रहने से उसे विवश होकर सम्राट से क्षमा माँगनी पड़ी।

शाहजहाँ का तृतीय पुत्र मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब था जो एक धर्म–परायण मुसलमान था तथा इसे कट्टरपंथी मुस्लिम वर्ग का सहयोग भी प्राप्त था। इस वर्ग का सहयोग प्राप्त करना औरंगजेब की एक विवशता भी थी। क्योंकि दारा के साथ दरबार का उदारवादी गुट था तो आरंगजेब को भी अपनी स्थिति की सुदृढ़ता हेतु कट्टरपंथी गुट का सहयोग प्राप्त करना अत्यावश्यक

था। अतः अपने राजनैतिक लाभ हेतु ही औरंगजेब ने कट्टर पन्थियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त युद्ध–कला और सैन्य प्रतिभा के दृष्टिकोण से औरंगजेब अपने समस्त भाईयों में सर्वाधिक योग्य और प्रतिभाशाली था, इस तथ्य को सभी इतिहासकार एकमत से स्वीकार करते हैं, औरंगजेब ने गुजरात, दक्षिण और मध्य एशिया के अभियानों में अपनी उत्कृष्ट सैन्य क्षमता का प्रदर्शन किया था, साथ ही वह कुशल राजनीतिक और कूटनीतिज्ञ भी था। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय वह दक्षिण में था।

औरंगजेब का जन्म 24 अक्टूबर 1618 ई0 को हुआ था। चार वर्ष के पश्चात् जहाँगीर के दरबार में बन्धक के रूप में नूरजहाँ के पास रहा। शाहजहाँ के राज्यारोहण के पश्चात् औरंगजेब का दैनिक भत्ता एक हजार रूपया निर्धारित किया गया। औरंगजेब के प्रारम्भिक शिक्षण के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने बहुत कम प्रकाश डाला है। समकालजीन इतिहासकार लाहौरी के अनुसार, मीर हसन निजामी नामक एक शिया को औरंगजेब का प्रारम्भिक शिक्षण नियुक्त किया गया था किन्तु उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। तत्पश्चात् औरंगजेब ने अनेक शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त की, उसे अरबी व फारसी भाषाओं का पूर्ण ज्ञान कराया गया। औरंगजेब के द्वारा लिखे गये हजारों की संख्या में प्राप्त पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि वह एक उच्च कोटि का विद्वान था। उसकी रुचि फारसी ग्रंथों के पठन–पाठन में थी। हदीस को उसने कण्ठस्थ कर लिया था, वह धर्म में भी

अधिक रुचि रखता था। कुरान एवं अन्य ग्रंथों का उसने गहन अध्ययन किया था। जहाँ दाराशिकोह विभिन्न धर्मों का गहन अध्यापन करना चाहता था वहीं औरंगजेब मात्र इस्लाम धर्म में ही गहन रुचि रखता था।

औरंगजेब यद्यपि एक कठोर शासक था तथापि अपने सामन्तों के प्रति भी अत्यन्त सम्मानित व्यवहार करता था। वास्तव में अगर हमें उसके चरित्र को समझना है तो हमें साम्प्रदायिकता की दूषित मानसिकता को निकाल देना होगा और तब हम औरंगजेब के चरित्र का अध्ययन करें तो एक दूसरा पक्ष सामने आता है जो उदारता, धर्मनिरपेक्ष, विलक्षण योद्धा कुशल कूटनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी सम्राट का प्रतीत होता है। औरंगजेब के मृत्योपरान्त उसके प्रयत्न निष्फल होने लगे तथापि उसके कार्यों पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में इन्हीं बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु सुविधा की दृष्टि से शोध निबन्ध को पाँच अध्याय में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय मध्य कालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, द्वितीय अध्याय मध्य काल में राजनीतिक भ्रष्टाचार, तृतीय अध्याय में सामाजिक भ्रष्टाचार, चतुर्थ अध्याय में आर्थिक भ्रष्टाचार एवं पंचम अध्याय में धार्मिक भ्रष्टाचार, इसके पश्चात निष्कर्ष एवं ग्रन्थ सूची है।

मध्यकाल में भ्रष्टाचार
(1206-1707)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

की

डी. फिल. उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
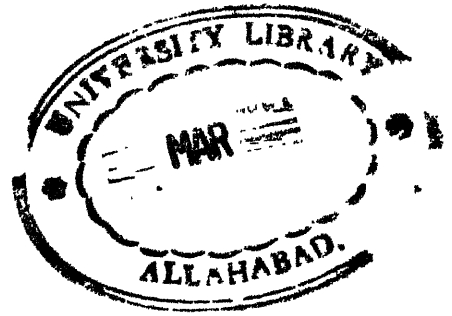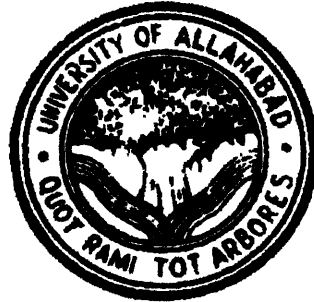
2002

शोध-निर्देशक
श्री योगेश्वर तिवारी
रीडर-मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्त्ता
राकेश कुमार
मध्यकालीन इतिहास
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि राकेश कुमार, शोध-छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने "मध्यकाल में भ्रष्टाचार" (1206-1707) विषय पर मेरे निर्देशन में शोध कार्य किया है। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद द्वारा निर्धारित सभी नियमों एवं शर्तों का पालन किया है।

यह शोध प्रबन्ध इनके मौलिक चिन्तन एवं अध्ययन का परिणाम है। मैं इसे डी0फिल0 उपाधि हेतु अग्रसारित करता हूँ।

निर्देशक

योगेश्वर तिवारी

(योगेश्वर तिवारी)

रीडर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

विषय-प्रवेश

आभार

भारत अपनी विशालता एवं आर्थिक समृद्धता के कारण प्राचीन काल से ही विदेशी आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकृष्ट करता रहा है। भारतीय समाज ने भारत में प्रवेश करने वाली अनेक विदेशी जातियों को अपने अन्तर्गत आत्मसात करने का यथाक्ति प्रयास किया, परन्तु अति प्राचीन भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं समाज में निरन्तरता, गतिशीलता एवं परिवर्तनशीलता के बावजूद भी निरन्तर बने रहे।

पूर्वमध्य काल में मुसलमानों के भारत आगमन के प्रथम प्रवाह में ही दिल्ली के सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन में अनेक परिवर्तनशील तत्वों का उदय हुआ, जिसके परिणामस्वरूप एक नवीन हिन्दू–मुस्लिम मिश्रित समाज अथवा नव भारतीय समाज की नींव पड़ी। यह परिवर्तन सर्वाधिक दिल्ली में ही दृष्टिगोचर हुआ, क्योंकि सल्तनत कालीन शासकों ने दिल्ली को राजधानी के रूप में स्वीकार करके उसे विशेष गरिमा प्रदान की। सुल्तान ने वहीं अपने प्रसाद बनवाये तथा विभिन्न शासकों ने अपने–अपने ढंग से दिल्ली को सुसज्जित करने का प्रयास किया। एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली की स्थापना की गयी। हालांकि सम्पूर्ण मध्य काल में समय–समय पर मुस्लिम शासकों ने शासन में सुधार हेतु आवश्यक कदम उठाये और सदैव यही प्रयास किया कि शासन व्यवस्था में

भ्रष्टाचार का कोई स्थान न हो लेकिन कुतुबुद्दीन ऐबक से लेकर औरंगज़ेब तक व्यापक प्रयासों के बावजूद भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जा सका।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''मध्य काल में भ्रष्टाचार (1206–1707) में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी स्तरौं पर भ्रष्टाचार की स्थिति का अत्यन्त रोचक व साधिकार वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पर कार्य करने की प्रेरणापरम श्रद्धेय गुरु डॉ0 जमुना प्रसाद, पूर्व निदेशक, मनोविज्ञानशाला, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ने प्रदान की फलतः मैं अपने श्रद्धासुमन सर्वप्रथम उन्हीं के चरणों में समर्पित करता हूँ।

व्यक्ति का जन्म जब होता है, संस्कारों के आधार पर उसे तीन प्रकार के ऋण प्राप्त होते हैं – प्रथम– देव ऋण, द्वितीय– पितृ ऋण, तृतीय– ऋषि ऋण। मैं अपने शोध निर्देशक डॉ0 योगेश्वर तिवारी, रीडर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मुझपर ऋषि ऋण प्रदान कर महती कृपा की है। अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद अपने कुशल निर्देशन में शोध कार्य पूर्ण कराया। उनके श्री चरणों की कृपा प्रोत्साहन, उत्साहवर्धन एवं स्नेहाशिर्वाद के लिए मैं उनके प्रति ह्रदय से आभारी हूँ। साथ ही मैं अपने अग्रज तुल्य डॉ0 विजय सोनकर शास्त्री, अध्यक्ष, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति, जनजाति आयोग, भारत सरकार का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने समय–समय पर शोध कार्य पूर्ण करने हेतु

प्रोत्साहित किया।

इस शोध–प्रबन्ध की पूर्णता हेतु परम् पूज्य पिता श्री वीरेन्द्र कुमार सिंह एवं स्नेहमयी माता श्रीमती सुशीला देवी का सहयोग अतुलनीय है जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन से अत्यधिक दुरुहतम एवं दुष्कर शोध कार्य सुगमता से सम्पन्न हो गया। उनके सहयोग का आभार शब्दों में व्यक्त करना मेरे लिए असम्भव है।

मैं उन सभी उदारचेत्ता, विद्वज्जनों एवं सहयोगियों के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग से उक्त शोध कार्य पूर्ण हो सका। मैं अपने परिवाररूपी वाटिका में खिली दो मासूम कलियों, अपनी पुत्री समृद्धि एवं सिद्धिका के प्रति स्नेह प्रकट करता हूँ जिनके प्रति वात्सल्य प्रेम ने साधक का कार्य किया। अन्त में मैं अपनी अर्धांगिनी श्रीमती रेणुका सिंह, अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के उस भावनात्मक, रचनात्मक सहयोग को विस्मृत नहीं कर सकता जो उन्होंने पग–पग पर दिया।

(राकेश कुमार)

भूमिका

मध्यकाल में भ्रष्टाचार
(1206—1707)

इतिहास का अर्थ सम्राटों की जीवनगाथा अथवा उनके द्वारा सम्पन्न संग्रामों का अध्ययन करना ही नहीं बल्कि इतिहास का अर्थ अतीत के उन लुप्त तथ्यों को उद्घाटित करना है, जिनकी प्रासंगिकता वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतिहास का तात्पर्य उन उत्कृष्ट तत्वों का प्राकट्यीकरण है जो सामाजिक संरचना सांस्कृति मूल्यों एवं जीवन के उच्चादर्शों को निर्धारित कर विभिन्न व्यवस्थाओं को जन्म देते हैं।

विभिन्न वंशों और व्यवस्थाओं के परिवर्तन से सामाजिक जीवन अप्रतिम रूप से प्रभावित होता रहा और शनैःशनैः एक परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न होती है। परन्तु जब यह परिवर्तन की गति असाधारण रूप से तीव्र हो जाती है, तब क्रांति का प्रस्फुरण होता है जिसके परिणामस्वरूप समाज, राष्ट्र, परिवेश तथा संस्कृति में आमूलभूल परिवर्तन होता है और इसी परिवर्तन का विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण वर्तमान परिप्रेक्ष्य में करना ही इतिहास कहलाता है। वस्तुतः इतिहास की सीमाएं इतनी व्यापक हो जाती है कि उनमें मानव समाज की धारा के परिवर्तन एवं परिवर्धन को प्रभावित करने वाले समस्त तत्व सम्मिलित हो जाते हैं।

उपरोक्त बिन्दुओं को दृष्टि में रखते हुए शीर्षक "मध्यकाल में भ्रष्टाचार"

(1206–1707) शोध निबन्ध में मध्यकाल भारतीय इतिहास में भ्रष्टाचार की क्या स्थिति थी, उसका स्वरूप कैसा था और उसने मध्यकाल में विभिन्न वंशों और शासकों के उत्थान एवं पतन में क्या भूमिका निभाई। क्या शासकों ने भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने का प्रयास किया और उसमें कहाँ तक वे सफल हो सके आदि का विस्तृत विवरण एवं विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। "भ्रष्टाचार" शब्द भारतीय इतिहास में अत्यन्त प्राचीन है और "भ्रष्टाचार" के लिए "उत्कोच" शब्द का प्रयोग किया गया है। चाणक्य ने "उत्कोच" शब्द की विस्तृत व्याख्या करते हुए उसे अति दण्डनीय अपराध बताया है। इसमें ज्ञात होता है कि भ्रष्टाचार किसी न किसी रूप में भारत में सदैव ही रहा चाहे उसका स्तर कभी कम या अधिक रहा हो। लेकिन मध्यकाल में भ्रष्टाचार की सीमाओं में वृद्धि हुई और न केवल शासक वर्ग बल्कि उच्च वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न वर्ग सहित समाज का विभिन्न वर्ग इसमें प्रभावित हुए बिना न रहा। इस तथ्य को समकालीन मध्यकालीन भारतीय इतिहास के लेखकों, यथा– जियाउद्दीन बरनी, इसामी शम्ससिराज अफीफ, जौहर आफताबची अब्बास खान सरवानी, अबुल फजल और बाबर तथा जहाँगीर की कृतियों के अध्ययनोपरान्त सहजता से उद्घाटित होता है। चाहे वह इल्तुतमिश का तुर्काने चहलगानी हो या अलाउद्दीन की बाजार नियंत्रण नीति या शेरशाह के विभिन्न सुधार हो या औरंगजेब के विभिन्न कड़े प्रतिबंध आदि में भ्रष्टाचार और उस पर नियंत्रण के प्रयासों का पर्याप्त विवरण

उपलब्ध है। इससे जहां एक ओर यह तथ्य प्रकट होता है कि मध्यकालीन शासकों ने समय–समय पर भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कठोर कदम उठाये वहीं यह तथ्य भी उद्घाटित होता है कि मध्यकालीन शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार आम जनता में भी अपनी जड़े गहराई तक जमा चुका था। यहां तक कि इस तथ्य के भी अनेक उदाहरण मध्यकालीन इतिहास में मिलते हैं, जब रिश्वत लेकर "किलदार" ने पूरा का पूरा किला ही विपक्षी को, विद्रोहियों को सौंप कर राज्य के साथ विश्वासघात किया। इस प्रकार के उदाहरण मुगल काल में विशेषकर औरंगजेब के शासनकाल में मुगल–मराठा संघर्ष और मुगल–राजपूत संघर्ष व मुगल गोलकुण्डा और बीजापुर संघर्ष के दौरान बड़ी संख्या में मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में इन्हीं बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु सुविधा की दृष्टि से शोध निबन्ध को पाँच अध्याय में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय मध्य कालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, द्वितीय अध्याय मध्य काल में राजनीतिक भ्रष्टाचार, तृतीय अध्याय में सामाजिक भ्रष्टाचार, चतुर्थ अध्याय में आर्थिक भ्रष्टाचार एवं पंचम अध्याय में धार्मिक भ्रष्टाचार, इसके पश्चात निष्कर्ष एवं ग्रन्थ सूची है।

प्रथम अध्याय

मध्य कालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास

भारत में मध्यकाल के प्रारम्भ होने की कोई तिथि नहीं दी जा सकती है, परन्तु साधारणतः इतिहासकारों में यह मान्यता रही है कि यहाँ इस्लाम धर्म के शनैः–शनैः प्रवेश के साथ ही मध्य–युग प्रारम्भ हुआ, हालाँकि दीर्घकाल तक प्राचीन परम्परायें, संस्थायें एवं रीति–रिवाज ज्यों के त्यों बने रहे। इस्लाम ने कई चरणों में भारतवर्ष को प्रभावित किया। इस्लाम धर्म क्या था, उसके सिद्धांत क्या थे तथा अरब में उसके अभ्युदय से लेकर फारस तथा भारतवर्ष की उत्तर–पश्चिम सीमा तक उसके प्रसार का विवरण देना समीचीन होगा।

इस्लाम धर्म की स्थापना एवं उसका अभ्युदय अरब में हुआ था। इस धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहब (570–632 ई0) थे। जिस समय मोहम्मद साहब का जन्म हुआ उस समय अरब धार्मिक अन्धविश्वासों, पौराणिक परम्पराओं, मूर्तिपूजकों तथा बहुजातियों का देश था। वहाँ असंख्य लड़ाकू जातियाँ निवास करती थी जिसके कारण चारों ओर कलह, द्वेष तथा पारस्परिक वैमनस्य की ज्वाला धधक रही थी। ऐसे अन्धकारमय तथा दुर्दिन के समय में ही वहाँ के कुरैश कबीले के अब्दुल्ला तथा अमीना दम्पत्ति से ही पैगम्बर मोहम्मद साहब का जन्म हुआ। मोहम्मद साहब प्रारम्भ ही से संयमी, उदार तथा कर्तव्यनिष्ठ थे और यदा–कदा वे चिन्तन व मनन में लीन रहते थे। उन्हें पैतृक व्यवसाय में तनिक

भी रुचि न थी, फिर भी व्यापार के सिलसिले में उन्हें निकटवर्ती देशों का भ्रमण करने सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का ज्ञान अर्जित करने का अवसर मिलता रहा। युवावस्था में वे धनाढ्य खदीज़ा (555–619 ई0) के सम्पर्क में आये और उनसे विवाह किया। किन्तु आध्यात्मवाद में अत्यधिक लीन हो जाने के कारण उन्होंने संसार त्याग कर दैवीय अनुभूति से उपदेश देना प्रारम्भ किया। उन्होंने मूर्तिपूजा बाह्य आडम्बरों तथा जाँति–पाँति एवं ऊंच–नीच का खण्डन किया। उनके सारगर्भित सरल उपदेशों, एकेश्वरवादी भातृत्व सम्बन्धी और उदारवादी विचारों के कारण उनके अनुयायियों की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ने लगी और अरबवासी उन्हें ईश्वर का अवतार ही नहीं वरन् मार्ग–दर्शक, धर्मप्रवर्तक और नवधर्म के संस्थापक के रूप में मानने लगे। उन्होंने इस्लाम धर्म की स्थापना की जो मुख्यतः मातृत्व, समानता, उदारता तथा साहिष्णुता पर आधारित था। उनकी शिक्षा में पवित्र जीवन, सामूहिक प्रार्थना (नमाज) संयमशील जीवन पर विशेष बल दिया गया। उनके उपदेश दूर–दूर प्रसारित होते रहे और उनका संकलन भी होता रहा जो कि कालान्तर में धार्मिक ग्रन्थ कुरान के रूप में मुखरित हुआ। प्रारम्भ में अरब की ही जनता ने उनका विरोध किया और उनके उपदेशों को ध्यान न देकर उन्हें मार डालने की चेष्टा की फलस्वरूप वे मक्का से मदीना चले गये। उनके आकर्षक व्यक्तित्व साधारण जीवन सारगर्भित विचारों से प्रभावित होकर अरबवासियों ने उन्हें अपना धार्मिक गुरू मानना स्वीकार किया।

उनके उपदेश पवित्र ग्रंथ कुरान में संग्रहीत है। उन्होंने अन्धविश्वासी, बहुदेववादी तथा बहुजातीयवादी अरबों को एकता के सूत्र में इस्लाम द्वारा बाँधा उन्हें नई दिशा दिखाई और उन्हें नवीन सामाजिक एवं प्रजातन्त्रात्मक राजनीतिक व्यवस्था प्रदान कर सुदृढ़ता प्रदान की। उनकी मृत्यु पचहत्तर वर्ष की आयु में हुई तदुपरान्त उनके विचारों के अनुरूप साठ वर्षीय अबूबक्र खलीफा निर्वाचित हुए। अबूबक्र के पश्चात् उमर खलीफा हुए उमर के समय इस्लाम धर्म का प्रचार तीव्रगति से ही नहीं हुआ वरन् इस्लामी जगत के क्षेत्र में भी वृद्धि हुई। इसी प्रकार से खलीफा उस्मान के समय भी इस्लामी संसार की उन्नति हुई। उस्मान की मृत्यु के पश्चात् इस्लाम दो दलों शिया एवं सुन्नी में विभाजित हो गया। शिया मतावलम्बी अली, जिनका विवाह पैगम्बर मोहम्मद की पुत्री फातिमा से हुआ था। कालान्तर में मुआविया ने अपने पुत्र यजिद को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर खलीफा के पद को वंशानुगत कर दिया। उम्मैयद व अब्बासी खलीफाओं के शासन–काल में इस्लामी जगत की राजधानी मदीना से हटकर दमिश्क हो गई। इसी काल में इस्लाम चीन से लेकर स्पेन तक फैला।

इस्लाम दर्शन सिद्धान्तों के कारण ही उसका प्रचार हुआ। पैगम्बर मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् अरब में जो सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था अंकुरित हुई उसमें पुरोहित व शासक के स्थान पर लोकतन्त्र को प्रधानता दी गई चूँकि सभी लोग समान माने गये। इस्लाम धर्मावलम्बी अर्थात् मुसलमान एकजुट

हो गये और उन्होंने निकटवर्ती देशों पर आक्रमण कर न केवल इस्लामी जगत की सीमा में वृद्धि की वरन् विजित लोगों को नवधर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया, जब विजित किये गये लोगों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया तो उन्हें समान अधिकार प्रदत्त किये गये और उन्हें भी मुसलमान समाज में सम्मिलित कर लिया गया। शनैः शनैः अरब वासियों की कबायली सेनाओं का नेतृत्व करते हुए अरब नेताओं ने विजित प्रदेशों में अपना प्रभुत्व स्थापित कर अपना प्रशासन वहाँ स्थापित किया और अपने अनुयायियों को जीवन यापन के नवीन स्रोत उपलब्ध कराये। इस प्रकार से धार्मिक उन्माद की छाया में न केवल अरबवासियों वरन् अनेक जातियां का आर्थिक विकास भी हुआ इस्लाम के सिद्धान्तों व उपदेशों को ग्रहण कर लोगों ने उसके प्रसार में योगदान दिया और जिन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था जर्जर हो गई थी उसके पुनरोत्थान में सहायता पहुँचाई। अरबों के सम्मुख खड़ा न हो सकने के कारण अनेक देशों को उनके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा। इस्लाम में प्रचार के साथ–साथ इस्लामी जगत का प्रसार भी हुआ। मोहम्मद साहब के जीवन–काल में अनेक अरब कबीलों व जातियों ने इस्लाम स्वीकार कर उन्हें अपना आध्यात्मिक व राजनीतिक नेता स्वीकार किया। उनकी मृत्यु के उपरान्त अरब सैनिकों ने विरोधियों का दमन कर उन पर प्रभुता स्थापित किया। प्रथम खलीफा अबूबक्र (632–634 ई0) के समय खालिद तथा अन्य सेनापतियों ने सम्पूर्ण अरब पर खलीफा का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। तदुपरान्त

अरब सेनानायकों ने सीरिया व ईरान पर आक्रमण किये। द्वितीय खलीफा उमर (634–644 ई0) के शासनकाल में दूर–दूर तक इस्लामी पताकायें फहराई गई और विजय का कार्य तीव्र गति से आगे बढ़ाया गया। मिस्र, सीरिया, ईराक, मेसोपोटामिया, फारस इतयादि देशों में इस्लाम की प्रभुत्ता स्थापित हुई। इस प्रकार से इस्लामी जगत की सीमायें अफगानिस्तान तक फैली। इसी काल में अरबों ने अपना प्रभुत्व मकरान और सीस्तान तक स्थापित किया। इसी काल में अरबों ने भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित थाना पर आक्रमण करने की अनुमति खलीफा से माँगी जो उन्हें प्राप्त न हुई। खलीफा उसमान (644–656 ई0) ने हकीम बिन जबाल को भारत पर आक्रमण करनके की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए भेजा। हकीम बिन जबाल ने खलीफा उस्मान को सूचित किया कि मार्ग में पानी खाद्यान्न के अभाव में सशक्त डाकुओं व लुटेरों के कारण छोटी सेना नष्ट होकर लौटेगी और उसी सेना को अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार से भारत पर आक्रमण करने का विंचार थोड़े समय के लिए स्थगित कर दिया गया। खलीफा उसमान के जीवन–काल में ही मुसलमान ईर्ष्या द्वेष तथा पारस्परिक वैमनस्य का शिकार हो गये। चतुर्थ खलीफा अली (656–661 ई0) के समय शिया व सुन्नियों के तनाव बढ़ गया ओर मुय्यैवियों के विरोध के कारण विशाल अरब साम्राज्य विभाजित हो गया। 661 ई0 में मुअवियों ने अली के पुत्र हरान को राजनीतिक मंच से हटाकर पृथक उमय्या खिलाफत की

स्थापना की। मुआवियों के समय से खलीफा आध्यात्मिक गुरु के साथ—साथ राजनीतिक शासक माना जाने लागा था। नवीन उमय्या वंश की राजधानी दमिश्क में स्थापित की गई जहाँ कि खलीफा का धार्मिक अस्तित्व क्षीण हुआ और राजनीतिक अस्तित्व बढ़ा इस काल में इस्लाम का प्रसार पूर्व में अफगानिस्तान व बिलोचिस्तान तथा अधिकांश मध्य—एशिया तथा पश्चिम में यूनानी सागर के अनेक द्वीपों में उत्तरी अफ्रीका में मोरक्को तक तथा दक्षिण यूरोप में स्पेन तथा फ्रांस के कुछ भागों में हुआ। उपरोक्त सभी देश व प्रदेश इस्लामी साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये।[1]

आठवी शताब्दी के प्रारम्भ में साम्राज्य विस्तार व इस्लाम के प्रचार की भावना से प्रेरित होकर अरबों ने भारत पर जलमार्ग से आक्रमण करने का निर्णय लिया। अभी तक लंका से माल से लदे हुए जो जहाज अरब आया करते थे उनमें से कुछ मार्ग में देवल के समीप समुद्री दस्यु लूट लिया करते थे। ईराक के शासक हज्जाज को समुद्री दस्युओं की कार्यवाहियों की सूचनायें निरन्तर मिलती रही और कालान्तर में उसने देवल के शासक राजा दाहिर से आग्रह किया कि वह समुद्री दस्युओं को दण्डित करे। राजा दाहिर ने जब समुद्री दस्युओं का दमन करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो हज्जाज़ ने क्रमशः तीन सेनानायकों को देवल पर आक्रमण करने के लिए भेजा परन्तु राजा दाहिर ने उन्हें पराजित कर भगा दिया। अन्तोगत्वा हज्जाज़ ने एक विशाल सेना मोहम्मद बिन कासिम के

नेतृत्व में देवल पर आक्रमण करने के लिए भेजी। मकरान पहुँचने पर मोहम्मद विन कासिम ने वहाँ के शासक की सहायता से जाटों व मेड़ों को अपनी सेना में भर्ती किया और स्थानीय लोगों की सहायता से राजा दाहिर पर आक्रमण कर उसे युद्ध में बुरी तरह से पराजित कर मार डाला। तदुपरान्त सिन्ध पर अरबों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। उसने देबल, ब्राह्मनावाद, अलोक, मुल्तान इत्यादि शहरों को अपने अधिकार में ले किया और राजा दाहिर तथा उसके वंश की प्रभुत्ता समाप्त कर दी। मोहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध में अरबों का शासन स्थापित किया। एक ही वर्ष में मोहम्मद बिन कासिम को हिन्दू शासक के विरूद्ध जो सफलता प्राप्त हुई उसके पीछे अनेक कारण थे सर्वप्रथम, ईराक के शासक हज्जाज ने जो सेना मोहम्मद बिन कासिम के नेतृत्व में भेजी उसमें प्रशिक्षित कुशल, अनुभवी साहसी अश्वारोही व सैनिक थे जिनमें धार्मिक उन्माद व राजनीतिक आकांक्षायें थीं। दूसरे, मोहम्मद बिन कासिम को न केवल मकरान के शासक वरन् स्थानीय जातीय तत्वों, जाटों व मेड़ों से विशेष सहायता प्राप्त हुई। तीसरे, राजा दाहिर ब्राह्मण था जिससे बौद्ध तथा अन्य मतावलम्बी असन्तुष्ट थे। उसकी अलोकप्रियता व धर्मान्धता के कारण सामान्य जनता ने बाह्य आक्रमणकारी का स्वागत किया। चौथे, ब्राह्य आक्रमण की रणनीति व युद्ध–युक्ति के सम्मुख राजा दाहिर व उसकी सेना धराशायी हो गई। हिन्दू शासक की परम्परागत युद्ध युक्ति तथा रक्षात्मक नीति सिन्ध की अरब आक्रमणकारियों से रक्षा न कर सकी।[2]

सिन्ध को विजित करने के पश्चात् मोहम्मद बिन कासिम ने अगले दो वर्षों में वहाँ अरब शासन तन्त्र की स्थापना की उसने इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दुओं को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर उनके मन्दिरों की रक्षा की और शासन तन्त्र में यत्र–तत्र हिन्दुओं को समुचित स्थान दिया उसने ब्राह्मणों को उच्च पदों पर नियुक्त किया और उन्हें जजिया आदि करों से मुक्त रखा। उसने भूराजस्व की दर 1/3 से 2/5 के मध्य रखी। ब्राह्मणों को छोड़कर शेष हिन्दुओं से उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उसने 48, 24 तथा 12 दिरहम प्रतिवर्ष के हिसाब से इस्लामी कानून के अनुसार जजिया वसूल करना प्रारम्भ किया। जजिया स्त्रियों, बच्चों, अपंग व्यक्तियों तथा दरिद्रों से वसूल नहीं किया जाता था। जजिया कर के अतिरिक्त अन्य कर सामान्य हिन्दुओं से वसूल किये जाते थे। उसके शासन में बहुसंख्य हिन्दुओं ने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया और उन्होंने अरब शासन के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त न की। उसका शासन न्याय, सामाजिक, समानता एवं उदारता पर आधारित होने के कारण बौद्धों, जाटों, मेड़ों आदि ने सहर्ष उसे स्वीकार किया। अपने दो वर्ष के कार्य–काल में मोहम्मद बिन कासिम ने अरब सेना को सुदृढ़ व शक्तिशाली बनाये रखा ताकि सिन्ध में अरब प्रशासन की जड़ें मजबूत हो जायें। सिन्ध पर अरबों की विजय यद्यपि राजनीतिक घटना मात्र थी परन्तु उसका अत्यधिक राजनीतिज्ञ एवं सांस्कृतिक महत्व था। सिन्ध पर अरबों की विजय के साथ ही अनेक अरबवासी मुसलमान मंसूरा, बैजा, महफूजा, मुल्तान

में स्थाई रूप से बस गये और अगले लगभग तीन सौ वर्षों तक अरबों का प्रभुत्व सिन्ध पर बना रहा। यह सत्य है कि अरबवासी भारत में विशाल स्थाई साम्राज्य स्थापित करने में असफल रहे और मुख्यतः वे सिन्ध में ही सीमित रहे परन्तु कालान्तर में बाह्य तुर्क आक्रमणकारियों का उन्होंने मार्गदर्शन किया। खलीफा या अरब शासकों से पर्याप्त सहायता प्राप्त न मिल सकने के कारण अरब सिन्ध से बाहर निकलकर निकटवर्ती हिन्दू शासकों को पराजित कर उत्तरी भारत की बहुराज्य व्यवस्था को समाप्त करने में असमर्थ रहे इसके अतिरिक्त उनका आधिपत्य केवल ऐसे प्रदेश पर था जो कि आर्थिक दृष्टि से असमृद्धिशाली था। अरबवासियों के कबीलों में पारस्परिक द्वेष एवं वैमनस्य के कारण उनकी साम्राज्यवादी भावना सिन्ध में प्रस्फुटित न हो सकती और इस प्रकार से वे साम्राज्य संस्थापन की दिशा में आगे बढ़ सके परन्तु सिन्घ पर अरबों की विजय के उपरान्त सिन्ध का सम्पर्क बाह्य मुसलमान संसार के देशों से स्थापित अवश्य हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सिन्ध में अनेक दार्शनिक विद्वान साहित्यकार मुसलमान संसार में विभिन्न देशों से आते रहे और यहाँ स्थाई रूप से बसते रहे। अरबों ने हिन्दुओं से दर्शन शास्त्र, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र आदि जैसे विषयों में अत्यधिक ज्ञान प्राप्त किया। खलीफा मंसूर (753–774 ई0) तथा हारूँ (786–809 ई0) के समय सांस्कृतिक आदान–प्रदान अत्यधिक हुआ। अनेक भारतीय मनीषी वैद्यक व चिकित्सक, ज्योतिषी, दमिश्क व काहिरा तथा

अन्य इस्लामी शहरों को गये। खलीफाओं ने उन्हें प्रश्रय देकर उनके ज्ञान से लाभ उठाया। भारतीय शिक्षा विदों, साहित्यकारों, दार्शनिकों व प्रकाण्ड पंडितों ने संस्कृत में अनेक विषयों पर ग्रन्थों पर अरबी–भाषा में अनुवाद कर इस्लामी जगत का ज्ञानवर्द्धन किया। ज्योतिष शास्त्र, गणित आदि अनेक ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हो जाने से भारतीय ज्ञान के भण्डार खुल गये जिससे दोनों ही देशों को लाभ हुआ इसके अतिरिक्त सिन्ध पर अरबों की विजय के उपरान्त इस्लाम ने शनैः शनैः उत्तरी भारत में जल–थल मार्गों से प्रवेश किया और अगली तीन शताब्दियों में वह सिन्ध्य से लेकर बंगाल तक फैल गया। नवीं शताब्दी के अन्त में पूर्व तक बगदाद के खलीफाओं में सिन्ध में अरब शासनतंत्र में सदैव रुचि दिखाई परन्तु अब्बासी खिलाफत के पतन के साथ–साथ खलीफा सिन्ध की ओर से विमुख हो गये। धीरे–धीरे केवल मुल्तान व मंसूरा को छोड़कर शेष सिन्ध पर से अरबों का प्रभुत्व समाप्त हो गया और जब मोहम्मद गोरी ने उत्तरी भारत पर आक्रमण करने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया तो सिन्ध में अरबों की स्थिति नाममात्र की थी। जिस समय अरब से लेकर चीन व स्पेन तक इस्लाम धर्म का प्रचार व प्रसार हो रहा था, पुराने वंशों तथा राज्यों का ह्रास हो रहा था उनके स्थान पर इस्लामी राज्यों एवं साम्राज्यों की स्थापना हो रही थी। भारतवर्ष में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिवर्तन हो रहे थे। हर्ष की मृत्यु 647 ई0 में हुई, उसका विशाल साम्राज्य छिन्न–छिन्न हो गया और अनेक नवीन राज्यों की स्थापना हुई।

इन नवीन राज्यों में पारस्परिक द्वेष वैमनस्य होने के कारण राजनीतिक एकता का उनमें अभाव था। वे अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने की स्पर्धा में तब तक लगे रहे जब तक कि वे स्वयं पत्नोन्मुख न हुए। भारतवर्ष यद्यपि एक भौगोलिक इकाई थी परन्तु राजनीतिक रूप से विभाजित 647 ई0 के पश्चात बँटे हुए भारत की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार से थी– उत्तर में काश्मीर का स्वतंत्र राज्य था। 631–33 में करकोटा वंश का शासक दुर्लभवर्धन यहाँ का शासक था। दुर्लभवर्धन के तीन उत्तराधिकारियों में से सबसे महान ललितदित्य मुक्तपिदा हुआ। उसने अपने राज्य का विस्तार निकटवर्ती प्रदेशों तक किया। उसने कन्नौज के शासक यशोवर्मन पर आक्रमण किया, उसे आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और तिब्बत तथा भूटान पर भी आक्रमण किये। उसके उपरान्त उसके पौत्र जयपिदा ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में करकोटा वंश का पतन हुआ और उत्पल वंश ने उसका स्थान लिया। उत्पल वंश का प्रथम शासक अवन्तीवर्मन (855–883 ई0) था। यद्यपि उसके शासन काल में काश्मीर में शान्ति एवं सुव्यवस्था रही किन्तु उसके समय राज्य का विस्तार न हुआ। उसके बाद शंकरवर्मन (883–902 ई0) में कश्मीर की गद्दी पर बैठा उसने नवीन कर लगाकर अपनी प्रजा को उत्पीड़ित किया परिणामस्वरूप व्यापार और विनिमय को क्षति पहुँची और वह अलोकप्रिय हो गया, बेगारी से कृषक उत्पीड़ित हुए। शान्ति और समृद्धि का दौर समाप्त हो गया। उसके शासन–काल में तुर्की शाही शासक

का ब्राह्मण ललइया ने विनाश किया और हिन्दु शाही राज्य की स्थापना की जो कि 1021 ई0 तक मुसलमानों के आक्रमण के समय तक बना रहा। शंकरवर्मन के उपरान्त काश्मीर के महान शासकों में से क्षेमगुप्त (950–958 ई0) में हुआ। प्रारम्भ में उसे ख्याति प्राप्त न हुई परन्तु शाही शासकों के परिवार से सम्बन्धित दिद्दा से विवाह करने के उपरान्त उसका उत्कर्ष हुआ। दिद्दा कुशल राजनीतिज्ञ, प्रशासक, कूटनीतिज्ञ एवं प्रभावशाली महिला थी जिसके कारण काश्मीर की घाटी में लगभग पचास वर्षों तक शान्ति बनी रही। क्षेमगुप्त की मृत्यु 958 ई0 में हुई उसके पश्चात् अल्पव्यस्क पुत्र गद्दी पर बैठा और दिद्दा राजमाता बनी। शीघ्र ही काश्मीर में विद्रोह की ज्वाला भड़की। दिद्दा ने विद्रोह दबा तो दिया परन्तु अपने ही राज्य में सामन्तों के कुचक्रों एवं षडयन्त्रों से वह स्वयं बच न सकी। उसकी मृत्यु 1003 ई0 में हुई। उसकी मृत्यु की उपरान्त काश्मीर की गद्दी पर उसके भाई उदयराज का पुत्र संग्राम राजा गद्दी पर बैठा। संग्राम राजा के सिंहासनारोहण से ही लोहारा वंश का काश्मीर में शासन प्रारम्भ हुआ। इस वंश के प्रमुख शासकों में हरसा (1089–1101 ई0) था। उसके वध के बाद द्वितीय लोहारा वंश का अभ्युदय हुआ किन्तु उसका इतिहास महत्वहीन है। इस प्रकार से सम्राट हर्ष की मृत्यु से लेकर बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक काश्मीर में निरन्तर राजनीतिक अस्थिरता, प्रशासनिक कुव्यवस्था तथा उथल–पुथल दीर्घ–काल तक बनी रही। ऐसी स्थिति में भविष्य में न तो वे सक्षम हुए और न ही वे निकटवर्ती शासकों की

बाह्य आक्रमणकारियों की सहायता कर सके।

उत्तरी भारत के महत्वपूर्ण राज्यों में कन्नौज के राज्य का महत्वपूर्ण स्थान न केवल कन्नौज के सामरिक महत्व वरन् वहाँ के सुप्रसिद्ध शासकों के कारण था। कन्नौज पर प्रतिहार तथा परिहार शासकों का शासन था। यशोवर्मन वहाँ का सबसे शक्तिशाली शासक था वरन् अनेक विद्वानों का प्रश्रयदाता भी था। उसके अनुभवहीन एवं शक्तिहीन उत्तराधिकारियों के समय कश्मीर, बंगाल तथा निकटवर्ती राज्यों के शासकों ने कन्नौज पर आक्रमण करके उसे दुर्बल बना दिया। परन्तु मिहिरभोज (840–890 ई0) के नेतृत्व में कन्नौज का पुनरोत्थान हुआ। उसने अपने शक्ति से विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसकी सीमायें सतलज नदी से लेकर राजपूताना तक और दूसरी ओर ग्वालियर तक फैली हुई थी जिसमें पंजाब तथा गंगा–जमुना के विशाल मैदान सम्मिलित थे। मिहिरभोज के उत्तराधिकारी महेन्द्र पाल के अन्तर्गत कन्नौज राज्य की सीमायें अक्षुण्ण बनी रही किन्तु उसके अनुज महीपाल (916 ई0) जब कन्नौज की गद्दी पर बैठा तो पतन शुरू होगा। राष्ट्रकूट शासिका इन्द्रा तृतीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। परिणाम स्वरूप महीपाल के अन्तर्गत आश्रित सामन्त उससे पृथक हो गये और राज्य का कुछ भाग उसके हाथों से निकल गया। इन्दरा तृतीय के लौटने के पश्चात् महीपाल ने अपने खोये हुए प्रदेशों को पुनः अधिकृत कर लिया और वह पुनः शक्तिशाली हो गया। शीघ्र ही उसे कालिंजर के जुझुकबुक्ती राज्य के

शासक यशोवर्मन के हाथों पराजय का मुँह देखना पड़ा। शनैः शनैः कन्नौज राज्य के हाथों से अनेक प्रान्त निकल गये और वह पतोन्मुख हुआ।[3]

इसी काल में ग्वालियर में बुन्देलखण्ड के चन्देलों का अभ्युदय हुआ और उन्होंने वहाँ स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। राजपूतों के अन्य प्रजातियों में चौहानों ने अजमेर में अपना राज्य स्थापित किया। अजमेर में विग्रह राज्य चतुर्थ, जो कि बीसल देव चोहान के नाम से भी सुविख्यात् हुआ, न केवल अपने शौर्य वरन् अपनी विद्वता के कारण प्रसिद्ध हुआ। उसने दिल्ली से लेकर दक्षिण में विन्धय पहाड़ियों तक अजमेर के राज्य की सीमायें बढ़ाकर उसे शक्तिशाली साम्राज्य में परिणित किया। बीसलदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका अल्प व्यस्क पुत्र अमरगंगे गद्दी पर बैठा शीघ्र उसके चाचा जगदेव के पुत्र पृथ्वीराज ने संरक्षक का दायित्व छोड़कर उसे पदच्युत का शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। 1169 में पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की गद्दी पर बीसल देव का भाई सोमेश्वर बैठा। सोमेश्वर का प्रभुत्व तोमर तथा चौहानों के राज्यों पर था और उनके अधीनस्थ प्रदेश भी उसके हाथों में आ गये। दिल्ली तथा अजमेर दोनों उसकी अधीनस्थता स्वीकार करने लगे। उसका उत्तराधिकारी प्रख्यात शूरवीर पृथ्वीराज चौहान था। उत्तरी भारत में अन्य महत्वपूर्ण राज्यों में चन्देलों का जुझुकबुत्ती राज्य था। मध्य भारत में छेदी के कलचुरियों का राज्य था। इसी भाँति बिहार में पालवंश के शासकों का राज्य था बंगाल में सेनवंश के शासकों का प्रभुत्व था।

पश्चिमी भारत में राजपूताना में अनेक राजपूत शक्तियाँ विद्यमान थीं। गुजरात में सोलंकी तथा मालवा में परमार वंश के शासक राज्य कर रहे थे। इस प्रकार से तुर्कों द्वारा उत्तरी भारत पर आक्रमण के समय राजनीतिक दशा अत्यंत दयनीय थी। हिन्दू राज्यों में निरन्तर संघर्ष पूर्ण स्थिति एकता के अभाव पारस्परिक कलह व द्वेष तथा सर्वोपरि शक्ति की महत्वाकांक्षा के कारण वे विभाजित तथा दुर्बल शक्ति के रूप में सिद्ध हुए। हर्ष की मृत्यु से लेकर तुर्कों के आक्रमण के समय तक उत्तरी भारत की सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हो चुके थे लगभग पहले 500 वर्षों में भारतीय समाज में इतनी उथल–पुथल कभी नहीं हुई। भारतीय समाज बहुजातीय तथा बहुरंगीय हो गया था। हिन्दुओं में अनेक जातियों तथा प्रजातियों की उत्पत्तियाँ उत्तरी भारत के सभी प्रदेशों में हुई। वर्ण व्यवस्था तथा तानाबाना ढीला पड़ गया। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सभी जातियों व उपजातियों में व्यवसाय के कारण विभक्त हो गये। उपरोक्त विभिन्न जातियों ने पैतृक व्यवसाय छोड़करकर जब नवीन व्यवसाय अपनाये तो उनकी जाति स्वतः बदल गई और समाज में उनका स्थान भी बदल गया। इसी काल में जल–थल मार्गों से सातवीं शताब्दी से भारत में मुसलमानों का आगमन व्यापारियों, दार्शनिकों, सूफी सन्तों विद्वानों के रूप में हुआ। यह प्रवासी उत्तरी भारत में विभिन्न प्रदेशों में पंजाब से लेकर बंगाल तक कश्मीर से लेकर सुदूर दक्षिण तक आकर स्थायी रूप से बसे और भारतीय समाज का अविछिन्न अंग बन गये। निम्न जाति के

हिन्दुओं ने जब इस्लाम अंगीकार कर लिया तो भारतीय मुसलमानों का नवीन समुदाय जिसमें सहस्त्रों व्यक्ति थे भारतीय समाज में जुड़ गया। यह समाज खान–पान, रहन–सहन तथा जाँति–पाँति एवं परम्पराओं से बुरी तरह से ग्रसित था। हिन्दू–मुस्लिम समाज पृथक–पृथक थे और दोनों की पूर्णतः विभाजित। भारतीय समाज में इस समय एकता का पूर्ण अभाव था।[4]

सातवी सदी से लेकर ग्यारहवीं सदी के अन्त तक उत्तरी भारत का धार्मिक वातावरण विशुद्ध था। यहाँ बौद्ध धर्म तथा उसके दो मत हीनयान तथा महायान, जैन धर्म तथा उसके दो मत श्वेताम्बर तथा दिगम्बर हिन्दू धर्म तथा उसके सहस्त्रों देवी–देवताओं के उपासक निर्विरोध अपने धर्म व मत का पालन करते रहे। इसके अतिरिक्त यहाँ अन्ध–विश्वास का बोलबाला ही नहीं वरन् कुछ मतों से सम्बन्धित ऐसी क्रियायें थीं जो कि मानवीय शक्ति को क्षीण कर उसे पंगु बना रही थीं। कोई भी धर्म या मत आध्यात्मिक सन्तुष्टि तो प्रदान कर सकता है परन्तु बाह्य आक्रमणकारियों से देश की रक्षा नहीं कर पाता है। बहुईश्वरवाद तथा बहुसंख्य मतो के कारण भारतीय समाज धार्मिक दृष्टि से विभाजित ही रहा जिसके परिणाम दूरगामी सिद्ध हुए।

भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पदा अत्यधिक मूल्यवान रही। चिरकाल से यहाँ बराबर आर्थिक समृद्धि रही। समकालीन ऐतिहासिक श्रोतों से इस बात की पुष्टि होती है कि यहाँ के मन्दिरों तथा राजाओं के पास अतुल धन सम्पदा थी। यह

सत्य है कि आठवी शती के प्रारम्भ में अरबों ने सिन्ध पर आक्रमण कर, ग्यारहवीं शताब्दी में गज़नी के सुल्तान महमूद गज़नी ने अपने आक्रमणों के दौरान अत्यधिक लूट-पाट करके आर्थिक क्षति पहुँचाई किन्तु फिर भी उत्तरी भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में सम्पदा सुरक्षित रही। संघर्ष के इस काल में भी उत्तरी भारत कभी भी सम्पदा विहीन नहीं हुआ।

भारतवर्ष की आन्तरिक दशा ने उत्तर पश्चिम सीमा के उस पार के देशों को भारत में प्रवेश करने एवं उस पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया।

भारत में इस्लामी साम्राज्य स्थापित करने की मुहम्मद बिन कासिम की कोई आकांक्षा न थी अतएव लगभग दो सौ वर्षों के उपरान्त तुर्कों ने इस दिशा में पग उठाते हुए भारत में तुर्की साम्राज्य स्थापित करने का लक्ष्य अपने सामने रखा। उमैय्यद वंश के खलीफाओं द्वारा स्थापित विशाल साम्राज्य का अधोपतन उस समय हुआ जबकि 750 ई0 में खलीफा मखान का वध हुआ। खलीफत में उमैय्यदों के पश्चात् अब्बासी खलीफाओं का अविर्भाव हुआ। दमिश्क से राजधानी को हटाकर अल-कुफ़ा में राजधानी स्थापित की गई। अब तक खलीफत अपनी आध्यात्मिक शक्ति खो चुकी थी और सांसारिक शक्ति प्राप्त करने की ओर उन्मुख हो चुकी थी परिणाम-स्वरूप खलीफा के विशाल साम्राज्य के निरंकुश सत्ताओं अपितु राज्यों ने जन्म लिया। अब्बासी खलीफाओं के समय अरबवासी अपनी सैन्य-क्षमता खो चुके थे जिसके कारण उनके स्थान पर तुर्कों की नियुक्तियों

प्रशासन में हुई और सम्पूर्ण प्रशासन को संचालित करते रहे परन्तु खलीफाओं का केन्द्रीय प्रशासन दिन–प्रतिदिन दुर्बल होता गया उनके अधीनस्थ प्रदेशों में स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना होने लगी। तुर्कों जिन्हें खलीफाओं ने अपनी रक्षा हेतु अंगरक्षक नियुक्त किये थे वे उन्हीं के हाथों की कठपुतली बन गये। तुर्कों का प्रशासन एवं दरबार में प्रभाव दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया। खलीफाओं की चारित्रिक दुर्बलताओं ने उन्हें सुरा–सुन्दरी में डुबो दिया। उनके दरबार दलबन्दी का अखाड़ा हो गये। खलीफा विद्रोहियों तथा अमीरों के विरूद्ध जब कुछ भी करने में असमर्थ रहे तो प्रान्तीय गवर्नरों ने लाभ उठाते हुए अपनी स्थिति सुदृढ़ कर स्वतन्त्रता पूर्वक व्यहार करना प्रारम्भ किया। शीघ्र ही साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया और नव–स्थापित राज्यों में अरब, ईरानी खुर्दिश आदि जाति के शासक शासन करने लगे तथा बगदाद में होने वाली गड़बड़ियों से लाभ उठाने लगे। मुबारूनहर समानीत गवर्नर इस्माइल के अन्तर्गत स्वतंत्र हो गया। समानीत तुर्कों को महत्व देने लगे। अबुल मलिक समानीत ने खुरासान अल्पतगीन के अन्तर्गत रख दिया। समानीत गवर्नर की मृत्यु के उपरान्त अल्पतगीन को अपने पद से वंचित होना पड़ा वह महत्वाकांक्षी साहसी तथा वीर था। खुरासान से वह गज़नी पहुँचा जहाँ उसका पिता पहले गवर्नर रह चुका था। यहाँ उसने स्वतन्त्रतापूर्वक रहना प्रारम्भ किया उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र इशहाक तथा दारस बल्कतगीन उसके राज्य की सीमाओं का विस्तार करने में असफल रहे। परन्तु जब सुबुक्तगीन नामक दास

के हाथों में सत्ता आयी तो गज़नी के छोटे से राज्य का विस्तार हुआ और उसे साम्राज्य का स्वरूप मिला। उसने अफगानों को संगठित किया, और उनकी सहायता से लामगॉन तथा सरिस्तान विजित किया। उसने बोरवारा में समानीदों को पराजित कर अपने प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि की। निरन्तर विजयें प्राप्त कर उसने अपने पुत्र महमूद के लिए खुरासान भी प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् सुबुक्तगीन भारतवर्ष की ओर बढ़ा इस समय भटिण्डा राज्य के शासक जयपाल का प्रभुत्व काश्मीर तथा लमगान से लेकर सरहिन्द तक के विशाल प्रदेश पर था। 986–87 में सुबुक्तगीन के राज्य में प्रविष्ट हुआ। शीघ्र ही सुबुक्तगीन की सफलताओं से क्षुब्ध होकर जयपाल ने उससे बदला लेने के लिए विशाल सेना के साथ कूच किया और लमगान होते हुए वह सुबुक्तीन के राज्य में प्रविष्ट हुआ। शीघ्र ही सुतुक्तगीन अपनी सेनाओं को लेकर जयपाल से युद्ध करने के लिए लमगान उपस्थित हुआ जहाँ उसने जयपाल को सन्धि करने, वार्षिक कर देने तथा उसे अधीनस्थता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् सुबुक्तगीन ने आगे बढ़कर जयपाल के राज्य के कुछ दुर्ग तथा शहर अधिकृत करके उससे अधिक धन वसूल किया और उससे सन्धि की शर्तों को पूर्ण करवाने हेतु उसके बन्धक ही गज़नी में नहीं रखें वरन् उस पर कठोर दृष्टि रखने के लिए अपने अमीर नियुक्त किये। दुर्भाग्यवश जयपाल सन्धि की शर्तों को जब पूर्ण न कर सका तो सुबुक्तगीन ने दूसरी बार उस पर आक्रमण किया। उसने उसके राज्य के

सीमावर्ती प्रदेशों को ध्वस्त किया और लमगान जीत कर वह गज़नी वापस लौट गया। अपनी क्षति को आँकलित करने के उपरान्त जयपाल ने अजमेर, कालिंजर, कन्नौज के शासकों का संघ बनाया और उनसे आर्थिक सहायता प्राप्त कर सुबुक्तगीन से युद्ध करने तथा उसकी बढ़ती हुई शक्ति को क्षीण करने का निर्णय लिया। इस युद्ध में जयपाल बुरी तरह से पराजित हुआ उसकी सेना छिन्न–भिन्न हो गई और उसे स्वयं मैदान छोड़कर भागना पड़ा। तदुपरान्त सुबुक्तगीन ने उससे अधिक धन प्राप्त किया उसे अधीनस्थता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और उसके हाथों से पेशावर भी ले लिया। सुबुक्तगीन के आक्रमणों ने हिन्दू सेनाओं की दुर्बलता ही नहीं सिद्ध कर दी वरन् तुर्कों को भारत में प्रवेश करने के लिए मार्ग दिखा दिये। सुबुक्तगीन की मृत्यु 997 ई0 में हुई। वह एक विशाल तथा संगठित राज्य छोड़ गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र महमूद गज़नी के सिंहासन पर बैठा। गज़नी का नव सुल्तान महमूद अत्यन्त वीर, साहसी तथा कुशल योद्धा था जो कि अपने पिता के पदचिन्हों का अनुसरण कर पश्चिम में विशाल तुर्की गजनवी साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था। खलीफा–अल–कादिर बिल्ला ने उसे मान्य पत्र देकर उसे अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने हेतु जब साधनों, धन व हाथियों की आवश्यकता हुई तो उसने समृद्धिशाली उत्तरी–भारत की ओर दृष्टि डाली। उसने 1000 ई0 में भारत की उत्तर– पश्चिम सीमा पर स्थित शहरों को

लूटा और अनेक दुर्ग व शहर अधिकृत किये। तत्पश्चात् विजित क्षेत्र को अपने अधिकारियों को सौंप कर वह गज़नी वापस लौट गया। अगले वर्ष 1001 ई0 में वह पुनः गजनी से भटिण्डा के शासक जयपाल के विरूद्ध विशाल सेनाओं के साथ रवाना हुआ। नवम्बर मास में पेशावर के समीप विरोधी सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ हिन्दू सेनायें पराजित हुई। महमूद असीमित लूट का माल व धन लेकर गज़नी पुनः वापस लौट गया। 1004–5 में महमूद गज़नी ने मीरा पर आक्रमण किया और उसे विजित कर उसे गजनी में मिला लिया। तत्पश्चात् उसने मुल्तान के कारमेथियन मतावलम्बी दाऊद खाँ पर आक्रमण करने का निर्णय लिया चूँकि मुल्तान जाने वलो मार्ग दुर्गम थे अतएव उसने पंजाब के शासक नन्दपाल से उसके राज्य से होकर जाने की अनुमति माँगी। परन्तु दाउद खाँ के मित्र होने के कारण अनन्दपाल ने जब उसे अनुमति न दी तो उसने उस पर आक्रमण कर दिया। महमूद ने अनन्दपाल को बुरी तरह से पराजित किया। और अत्यधिक धन व माल लूट में प्राप्त किया। अनन्दपाल को काश्मीर की ओर भगा देने के उपरान्त महमृद गज़नी ने मुल्तान (1006 ई0) में आक्रमण कर उसे अधिकृत कर लिया। इसी समय महमूद को सूचना प्राप्त हुई कि काश्गर के शासक ने उसके साम्राज्य पर आक्रमण के लिए मुल्तान के दाउद की सहायता करने वाले लाहौर के हिन्दू शासक अनन्दपाल से सम्पर्क किया तो अनन्दपाल ने उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली तथा अजमेर के शासकों का संघ बनाया और उनसे

सैनिक व आर्थिक सहायता प्राप्त कर वह महमूद गज़नी के आक्रमण को विफल बनाने के लिए आगे बढ़ा। इस संघर्ष में खोखरों ने भी अनन्दपाल की सहायता की जिससे महमूद गज़नी की सेना पराजित होकर वापस लौट गई। 1008–09 ई0 में अपनी पूर्व सफलताओं से प्रेरित होकर महमूद गज़नी ने कांगड़ा (नगरकोट) की ओर अपनी विशाल सेना के साथ कूच किया। नगरकोट के दुर्ग में असीमित सम्पदा थी और बहुमूल्य रत्न जड़ित मूर्तियां थी। महमूद गज़नी की विशाल सेनाओं ने नगरकोट की घेराबन्दी प्रारम्भ की। हिन्दू हतोत्साहित होकर भाग खड़े हुए। महमूद गज़नी ने नगरकोट के दुर्ग में प्रवेश कर अत्यधिक धन लूट में प्राप्त किया तत्पश्चात! सुल्तान महमूद गज़नी स्वदेश वापस लौट गया जहाँ उसने लूट में प्राप्त असीमित धन सम्पदा सोने–चाँदी हीरे जवाहरातों की प्रदर्शनी लगायी। 1010 ई0 में महमूद गज़नी ने मुल्तान पर पुनः आक्रमण किया। उसने वहाँ के शासक दाउद को पराजित कर व बन्दी बना कर गूरक के दुर्ग में डलवा दिया। तीन वर्ष पश्चात 1013 में वह नर्दिन के भीमपाल अथवा नन्दनाथ पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। उसने उसे पराजित कर दुर्ग अधिकृत कर लिया और लूट में अत्यधिक धन व सम्पदा प्राप्त की। भीमपाल काश्मीर की घाटी की ओर भाग गया जहाँ कि आक्रमणकारियों ने उसका पीछा किया। काश्मीर में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करने के उपरान्त महमूद गज़नी वापस लौट गया। 1014 ई0 में उसने थानेश्वर पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य

वहां के हिन्दू शासक से श्रीलंका से लाये गये हाथियों को उपलब्ध करना था। महमूद ने हिन्दुओं को पराजित कर उन्हें मौत के घाट उतारा। थानेश्वर का दुर्ग विजित किया और वहाँ से अत्यधिक धन स्वर्ण आदि प्राप्त कर तथा मन्दिरों को लूटकर वह स्वदेश वापस लौट गया। उसकी भारतवर्ष में अभियानों की सफलता से इस्लामी जगत में ख्याति बढ़ी। परिणामस्वरूप मुबारून्नहर खुरासान तथा तुर्किस्तान के अनेक सैनिक उसकी सेना में भर्ती होने के लिए चल पड़े। 1018 ई0 में वह अपनी विशाल सेनाओं को लेकर उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली कन्नौज के राज्य पर आक्रमण करने के लिए गज़नी से रवाना हुआ। पंजाब की नदियों को पार करते हुए वह जनवरी 1019 ई0 में कन्नौज पहुँचा। मार्ग में पड़ने वाले सभी महत्वपूर्ण सामरिक शहरों तथा दुर्गों पर उसने विजय प्राप्त की। वरन (बुलन्दशहर) पहुँचने पर वहाँ के स्थानीय राजा हरदत्त ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और अपने प्राण बचाने के लिए लगभग 10,000 लोगों ने इस्लाम धर्म अंगीकार किया। कन्नौज पहुंचकर उसने अपनी सेनायें सुसज्जित की परन्तु वहाँ के परिहार शासक राज्यपाल ने निर्विरोध समर्पण कर दिया। महमूद गज़नी ने एक ही दिन में वहां के सात दुर्ग तथा सम्पूर्ण शहर अपने अधिकार में ले लिये। कन्नौज की विजय के उपरान्त महमूद गज़नी बुन्देलखण्ड होते हुए गज़नी वापस लौट गया। परिहार शासक के समर्पण से उत्तरी भारत के अन्य राजपूत शासक अत्यधिक हतोत्साहित हुए परन्तु कालिंजर के चन्देल

शासक व उसके पुत्र ने कन्नौज के शासक राज्यपाल के समर्पण को अपनी मर्यादा की हानि माना। चन्देल शासक के पुत्र विद्याधन ने ग्वालियर के राजकुमार के साथ मिलकर राज्यपाल को युद्ध में पराजित कर मार डाला। जब सुल्तान महमूद गज़नी को कन्नौज के शासक राज्यपाल की मृत्यु की सूचना मिली तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा उसने अपने अधीनस्थ राज्य के शत्रुओं को दण्ड देने के निर्णय लिया। 1019 ई0 में ही महमूद ने गज़नी से प्रणयान किाय, जमुना नदी पार की और परिहार शासक त्रिलोचनपाल के सम्मुख पहुँचा उसी समय राजपूत संघ का नेतृत्व गण्डा नामक सेनानायक ने किया। महमूद, विरोधियों का सामना करता हुआ चन्देल राज्य में पहुँचा, परन्तु गण्डा उसकी सेनाओं का सामना न कर सका और वह मैदान छोड़कर भाग गया। तत्पश्चात् उसकी सेनाओं ने गण्डा के शिविर को लूटकर अत्यधिक धन व अधिक संख्या में हाथी प्राप्त कियं 1021–22 में महमूद गज़नी ने पुनः उत्तरी–भारत पर आक्रमण कर वहाँ के शासक व सामन्तों को आधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् वह कालिंजर के विरूद्ध बढ़ा। इस समय काजिंजर का विशाल दुर्ग राजा गेण्डा के अन्तर्गत था। गेण्डा महमूद गज़नी की शक्ति से भली–भाँति परिचित था अतएव उसने उसके साथ सन्धि कर ली। गेण्डा से अत्यधिक धन व बहुमूल्य रत्न लेकर महमूद गज़नी ने सोमनाथ पर आक्रमण किया, जो कि उसके अभियानों में सबसे महत्वपूर्ण था। उसे सोमनाथ के मंदिर में संचित असीमित

धन, बहुमूल्य सम्पदा की जानकारी थी। वह अपनी सेना को लेकर गज़नी से रवाना हुआ और मार्ग में दुर्गम प्रदेशों को पार करता हुआ वह मुल्तान होता हुआ अजमेर पहुँचा, जिसे उसने बुरी तरह से लूटा व बर्बाद किया। तत्पश्चात् वह नहरवाला की ओर बढ़ा उसने बिना किसी कठिनाई के राजा भीम से नहरवाला का दुर्ग ले लिया। शीघ्र ही वह सोमनाथ के मंदिर के द्वार पर पहुँचा। सदियों से इस मंदिर में सोमनाथ की मूर्ति की पूजा होती चली आ रही थी और लोग मंदिर में चढ़ावा अर्पित करते चले आ रहे थे। मंदिर के रख–रखाव के लिए दो हजार गाँवों का राजस्व आरक्षित था। संक्षेप में, इस मंदिर में अत्यधिक धन बहुमूल्य रत्न आभूषण इत्यादि की सम्पदा थी। हिन्दुओं ने प्रत्येक भाँति मंदिर की सुरक्षा करने की चेष्टा की लेकिन आक्रमणकारियों ने मंदिर में प्रवेश करने में सफलता प्राप्त कर ली। उसने सोमनाथ के मंदिर को बुरी तरह से लूटा, धन सम्पदा एकत्र की हिन्दुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त की और अपना लक्ष्य पूर्ण करने के उपरान्त वह गज़नी वापस लौटने के लिए चल पड़ा। मार्ग में उसने नहरवाला के शासक, जिसने सोमनाथ के मंदिर की रक्षा करने में अपना योगदान दिया था पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। नहरवाला का शासक भाग खड़ा हुआ। महमूद गज़नी ने उसका राज्य अधिकृत कर लिया तत्पश्चात् उसने भट्टी राजपूतों को दबाया। गज़नी वापस लौटते हुए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। नहरवाला के शासक भीमदेव तथा अजमेर के चौहानों ने उसका पीछा किया

किसी भाँति कच्छ की मरुभूमि तथा मुल्तान व सिन्ध को पार करता हुआ वह गजनी पहुँचा। 1026 ई0 में महमूद गज़नी नमक की श्रृंखलाओं में निवास करने वाले जाटों के विरूद्ध बढ़ा। कारण यह कि लाहौर तक जाट अत्यधिक प्रभावशाली एव उद्दण्ड हो चुके थे वे कुछ समय से निकटवर्ती प्रदेशों पर छापा मारने में भी सफलता प्राप्त कर रहे थे। जब महमूद गज़नी की सेना सोमनाथ से वापस लौट रही थी तो इन्हीं जाटों ने उसका मार्ग रोका तथा उसे परेशान किया अतएव जाटों का दमन करने हेतु महमूद गज़नी उनके विरूद्ध बढ़ा। महमूद गज़नी ने उन पर आक्रमण कर उन्हें पराजित कर धूल–धूसरित कर दिया।[5]

सुल्तान महमूद गजनी सफल विजेता साम्राज्य निर्माता एवं अपने युग का सुप्रसिद्ध योद्धा था। गज़नी के छोटे से राज्य की सीमायें बढ़ा कर उसने उसे तुर्की गजनवी साम्राज्य में परिणित कर दिया। समनीत तथा ईरानी साम्राज्यों के पराभव ने उसे अवसर प्रदान किया कि वह तुर्कों के सहयोग से अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करे। उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा ने उसे प्रोत्साहन दिया। उसका लक्ष्य उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य को स्थापित करना कदापि न था अपितु उसका लक्ष्य राज्यों की राजधानियों, विभिन्न दुर्गों तथा सुप्रसिद्ध मन्दिरों मं संचित धन सम्पदा को अधिकृत करना ही था। गज़नी के तुर्कों ने इतना धन कभी भी अपने देश में नहीं देखा था। धन अभाव के कारण वहाँ की आर्थिक स्थिति डॉवाडोल हो रही थी। उत्तरी–भारत पर बारम्बार आक्रमण किये। धन के ही

सहयोग से उसने पश्चिम में न केवल विशाल तुर्क गजनवी साम्राज्य स्थापित किया वरन् उसने अपनी राजधानी गजनी को दुल्हन की भाँति सजाकर उसे खूबसूरत बनाया, कवियों, साहित्यकारों, शिल्पकारों को प्रश्रय देकर इस्लामी संस्कृति में चार चाँद लगाये और ख्याति प्राप्त की। दूसरी ओर, पश्चिम तथा उत्तरी–भारत में उसकी विजयों का कटु पहलू भी है। पश्चिम में उसने विजयें तो प्राप्त की परन्तु वह उन्हें संगठित न कर सका और न नवविजित प्रदेशों के प्रशासन की ओर ध्यान दे सका। पूर्व में उत्तरी–भारत में उसने अपने कृत्यों द्वारा न केवल हिन्दू राज्यों को क्षति पहुँचाई वरन् हिन्दू जनता में मुसलमानों के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। आम हिन्दू मुसलमानों को मूर्ति विध्वंसक तथा लुटेरे समझने लगे। हिन्दुओं के हृदय में उसने जिस अवधारणा को जन्म दिया उसे कुछ समय तक दूर न किया जा सका। वास्तव में इस्लाम धर्म की सेवा न कर उसने उसे अत्यधिक क्षति पहुँचाई। महमूद गज़नवी की मृत्यु अप्रैल 1030 ई0 में गज़नी में हुई। उसकी मृत्यु के समय भारतवर्ष से बाहर बुखारा, समरकन्द, मुवारुन्नहर, खुरासान, तर्बिस्तान, सीस्तान, अफगानिस्तान तथा उत्तर–पश्चिम की अधिकांश भाग था। उत्तरी भारत में काश्मीर, पंजाब, सिन्ध, दोआब में कन्नौज, पश्चिमी भारत में गुजरात तथा कालिंजर व ग्वालियर व उसके निकटवर्ती प्रदेशों पर उसका आधिपत्य था। अपने जीवन–काल में वह विजयें तो प्राप्त करता रहा परन्तु वह अपने विशाल साम्राज्य को प्रशासनिक सूत्र में बांध न सका। उसकी

मृत्यु के साथ वर्षों पश्चात् सेलजुक तुर्कों ने उसके कार्य पर पानी फेर दिया। सेलजुक तुर्क अफगानिस्तान की ओर निर्विरोध बढ़े। और उन्होनें गजनवी तुर्कों की प्रभुता नष्ट कर दी।[6]

महमूद गजनवी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मोहम्मद, गज़नी के सिंहासन पर बैठा परन्तु 1031 ई0 में उसके भाई मसूद ने अमीरों तथा सेनानायकों के सहयोग से उसे पदच्युत कर दिया और प्रशासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। मसूद अपने पिता महमूद गज़नी के समान साहसी वीर महत्वाकांक्षी तथा योग्य शासक था। इस समय भारत में अधिकृत प्रदेशों की देखभाल अरीयारक कर रहा था। अरीयारक ने महत्वाकांक्षी अर्धस्वतन्त्र शासक की भाँति जब व्यवहार करना प्रारम्भ किया तो मसूद को उसके विरूद्ध ध्यान देना पड़ा। मसूद ने अपने वजीर ख्वाजा अहमद हसन को अरीयारक के पास भेजकर उसे दरबार में बुलाया जब अरीयारक ख्वाजा अहमद हसन की चिकनी–चुपड़ी बातों में आकर दरबार में उपस्थित हुआ तो उसे बन्दी बना लिया गया और उसे बन्दीगृह में डलवा कर विष द्वारा मार डाला गया। उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उसके स्थान पर अहमद नियालत्गीन को उत्तरी भारत में गजनवियों द्वारा अधिकृत प्रदेशों का गवर्नर नियुक्त किया गया। अहमद नियालत्गीन ने भारत आकर प्रसिद्ध धार्मिक शहर बनारस पर आक्रमण किया। उसने यहाँ लूट में अत्यधिक धन व सामान प्राप्त किया। उसकी सफलताओं से क्षुब्ध होकर कुछ अधिकारियों ने सुल्तान मसूद

से उसके विरुद्ध शिकायत की कि उसने बनारस से जो धन प्राप्त किया था उसमें से उसने बहुत कम करद के रूप में उसे भेजा तथा उसने उसे ठाकुरों से करद वसूल किया और हाथी अपने पास रखे लिये। यही नहीं, सुल्तान मसूद को सूचना दी गई कि अहमद नियालत्गीन ने तुर्कदास प्राप्त कर लिये हैं तथा लाहौर के तुर्क सैनिक उसके पक्ष में हो गये हैं। जिस समय अहमद नियालत्गीन के विरूद्ध गज़नी में सूचनायें पहुँच रही थी उसी समय खुरासान, खतलान तथा बुखारिस्तान में विद्रोह हो रहे थे। सुल्तान मसूद के लिए यह निश्चय करना कठिन हो रहा था कि वह अहमद नियालत्गीन के स्थान पर भेजे। अन्तोगत्वा उसकी दृष्टि निम्न जाति के हिन्दू नाई के पुत्र तिलक पर पड़ी। तिलक सुलेखक, अरबी तथा फारसी का ज्ञाता तथा गुणी व्यक्ति था। तिलक को क्रमशः सम्मान–सूचक चिन्हों से सम्मानित किया गया व उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की गई। सुल्तान मसूद द्वारा नियुक्त तिलक को भारत में सर्वोच्च गजनवी अधिकारी समझा जाने लगा। उसके भारत में आगमन के पश्चात् ही गजनवी अधिकारियों में वैमनस्य के कारण विरोधी शक्तियाँ प्रबल हो गई। तिलक ने विशाल सेनाओं के साथ लाहौर पहुँच कर विद्रोही अहमद नियालत्गीन का पीछा किया उसने हिन्दुओं व जाटों की सहायता से उसके विरूद्ध संघर्ष जारी रखते हुए अन्त में उसे समाप्त करने में सफलता प्राप्त कर ली। तिलक की अहमद नियालत्गीन के विरूद्ध सफलता की सूचना पाकर सुल्तान मसूद अत्यधिक प्रसन्न हुआ। थोड़े ही समय में तिलक ने

गजनवियों द्वारा उत्तरी भारत में अधिकृत प्रदेशों में पुनः व्यवस्था करने में भी सफलता प्राप्त कर ली। तत्पश्चात् सुल्तान मसूद ने हॉसी पर आक्रमण करने का तथा उत्तरी भारत में विजयें प्राप्त करने का निर्णय लिया उसने अपने पुत्र मुराद को बल्ख का गवर्नर नियुक्त कर तथा अपने वजीर ख्वाजा अहमद को गज़नी का प्रशासक नियुक्त कर वह विशाल सेनाओं को लेकर भारत की ओर बढ़ा। अक्टूबर 1037 ई0 में काबुल होते हुए वह झेलम नदी के तट पर पहुँचा यहाँ वह चौदह दिनों तक रोगग्रस्त रहा। स्वस्थ होने पर उसने हॉसी के दुर्ग पर घेरा डाला और उसे विजित कर लिया। उसके बाद उसने सोनपथ पर आक्रमण कर अधिक धन प्राप्त किया। इस अभियान के समापन पर वह गज़नी वापस लौट गया। सुल्तान मसूद की अनुपस्थिति में सेलजुक तुर्कों ने गज़नी को लूटा तथा निशानुर को विजित कर लिया। इसके पश्चात् तुगीरल के नेतृत्व में उन्होनें खुरासान विजित कर सेलजुक वंश की स्थापना 1037 ई0 में की। 1037ई0 में तुर्की सेनानायक तुगरिल ने बल्बद तथा वेदजन पर आक्रमण किये तो सुल्तान मसूद को गम्भीर स्थिति का आभास हुआ तो वह विशाल सेना लेकर सेलजुक तुर्कों के विरूद्ध बढ़ा, किन्तु मर्व में उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। सेलजुक तुर्कों के द्वारा आक्रमणों का प्रभाव गजनवी साम्राज्य पर पड़ा। तीन वर्ष पश्चात् जब सुल्तान मसूद के पुत्र मौदाद ने उनके आक्रमणों को विफल बनाने का प्रयास किया तो उसे भी सफलता न मिली। सेलजुक तुर्कों ने खुरासान पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। धीरे–

धीरे गजनवी साम्राज्य के पश्चिमी प्रदेश हाथों से निकल गये अब गजनवी शासक सुल्तान मसूद को अपना ध्यान उत्तरी भारत में गजनवियों के अधीन प्रदेशों की ओर देना पड़ा। सेलजुक तुर्कों से भयभीत होकर सुल्तान मसूद ने उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मरगीला में तुर्की तथा हिन्दू दासों ने विद्रोह कर दिया। विद्रोहियों ने उसे बन्दी बना लिया। तत्पश्चात् उन्होनें उसके भाई महमूद जिसे उसने अपने सिंहासनारोहण के पश्चात् अन्धा कर दिया था, सुल्तान घोषित कर दिया। 1041 ई0 में पदच्युत मसूद को मौत के घाट उतार दिया गया। मसूद अपने पिता की भाँति कुशल एवं उदार शासक ही नहीं था वरन् वह कलाकारों, विद्वानों, साहित्यकारों तथा कवियों का प्रश्रयदाता भी था। सुल्तान मसूद ने अपने वजीर की इच्छा के विरूद्ध गज़नी छोड़कर भारतवर्ष की ओर प्रयाण करके बड़ी भूल की। क्योंकि खुरासान विजित करने के उपरान्त सेलजुक तुर्क फारस तथा उसके निकटवर्ती देशों को विजित करने में लग चुके थे। अतएव इस समय गज़नी को कोई खतरा न था। दिवंगत सुल्तान मसूद के पुत्र मौदाद ने अपने चाचा मोहम्मद को पराजित कर अपने पिता की मृत्यु का बदला ले लिया। तदुपरान्त मौदाद ने मोहम्मद के समर्थकों को दण्डित किया। मौदाद के पश्चात् गज़नी के सिंहासन पर अनुभवहीन तथा दुर्बल शासक बैठे। इसी मध्य सेलजुक तुर्कों के गजनवी साम्राज्य पर आक्रमण जारी रहे और गजनवी शासकों के हाथों से अनेक प्रदेश निकलते रहे। 1059 ई0 में जब इब्राहीम गज़नी का शासक हुआ

तो विघटन की क्रिया रूक गई उसने शत्रुओं को पराजित किया व विद्रोहियों का दमन किया। उसकी मृत्यु 1098 ई0 में हुई और उसके पश्चात् अलाउद्दीन मसूद गज़नी की गद्दी पर बैठा। वह सेलजुक तुर्कों से भयभीत था अतः उसने सेलजुक सुल्तान संजर के परिवार में विवाह कर अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया, परन्तु धीरे–धीरे गज़नी में सेलजुक तुर्कों का प्रभाव बढ़ता गया और गजनवी तुर्कों का प्रभाव घटता गया, कुछ वर्षों उपरान्त अर्सलान गजनवी गद्दी के लिए दावेदार था को अपना समर्थन देना प्रारम्भ किया। संजर ने अर्सलान को युद्ध में पराजित किया। अर्सलान जान बचाकर भारत की ओर भाग गया जहाँ उसकी मृत्यु 1117 ई0 में हुई। तत्पश्चात् अर्सलान की पराजय व पलायन के उपरान्त संजर ने बहराम को गज़नी की गद्दी पर बिठा कर शासक निर्माता की भूमिका निभाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार से दिन–प्रतिदिन गज़नी के आन्तरिक मामले में सेलजुक तुर्कों का प्रभाव बढ़ता गया। नव सुल्तान बहराम ने विद्रोहियों के नेता बहलीम तथा उसके समर्थकों को पराजित कर बन्दी बना लिया। उसने मुल्तान व पंजाब में गजनवियों की सम्प्रभुता पुनः स्थापित की उसके शासनकाल में ही उत्तरी–भारत के हिन्दू शासकों ने राजपूत संघ बनाया और लाहौर की घेराबन्दी की, परन्तु राजपूत शासक गजनवी तुर्कों को भारतवर्ष से निकालने में असमर्थ रहे। इसी बीच बहराम का संघर्ष गोर राज्य के तुर्कों से प्रारम्भ हो गया। कुछ समय से गौरियों का उत्कर्ष हो रहा था यह वही तुर्क थे जिन्होनें कि पहाड़ियों के मध्य रहकर महान सुल्तान

महमूद गजनवी के अभियानों में भाग लिया था, किन्तु अब गजनवियों की शक्ति क्षींण होते देखकर अपना प्रभाव बढ़ाना उन्होनें शुरू कर दिया। बहराम ने सूरयों के नेता को मृत्युदण्ड देकर सैफुद्दीन के तीसरे भाई अलाउद्दीन हुसैन जिसका उपनाम जहाँन–सोज़ था, ने प्रतिकार लेने के उद्देश्य से गज़नी पर आक्रमण किया। अन्तोगत्वा युद्ध में बहराम शाह पराजित हुआ और उसका पुत्र दौलत शाह मारा गया। तदुपरान्त अलाउद्दीन हुसैन जहाँनसोज ने गज़नी को अपने अधिकार में लेकर उसे सात दिनों में विध्वंस करके रख दिया। बहरामशाह पराजित होकर भारत की ओर भागा परन्तु मार्ग में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र ख़ुसरों मलिक लाहौर में गद्दी पर बैठा। खुसरो मलिक विलासी था वह गोरियों के आक्रमणों का सामना न कर सका इसके विपरीत गज़नी में गोरियों का प्रभाव बढ़ता ही गया। अलाउद्दीन हुसैन जहाँनसोज के पुत्र की मृत्यु उपरान्त उसका भतीजा ग्यासुद्दीन–बिन–सामगोर राज्य का स्वामी हुआ। ग्यासुद्दीन ने गज़ तुर्कों के विरूद्ध युद्ध किये और गज़नी को विजित कर अपने भाई मुइजुद्दीन के हाथों सौंप दिया। ग्यासुद्दीन यद्यपि गोर राज्य की राजधानी फिरोज कोह में ही शान्तिमय जीवन व्यतीत करता रहा, उसके भाई मुइजुद्दीन मोहम्मद (मुहम्मद गोरी) ने अपने लिए एक अन्य मार्ग ही चुना उसने 1181 में लाहौर पर आक्रमण कर गज़नवी शासक खुसरो मलिक को सन्धि करने पर बाध्य किया तथा अपना पुत्र बन्धक के रूप में समर्पित करने के लिए उत्पीड़ित किया। अगले चार वर्षों

में जब खुसरो मलिक सन्धि की शर्तों को पूर्ण न कर सका तो मुहम्मद गोरी ने लाहौर पर आक्रमण किया और उसे तहस–नहस करने के पश्चात् सियालकोट विजित कर लिया। मुहम्मद गोरी ने 1186 में लाहौर पर पुनः आक्रमण किया इस बार खुसरो मलिक को बन्दी बनाकर उसने गज़नी भिजवा दिया जहाँ से उसे फिरोज कोह भेज दिया गया। 1201 में खुसरो मलिक का वध कर दिया गया इस प्रकार से गजनवी वंश का अन्त हुआ।[7]

गजनवियों के द्वारा निरन्तर उत्तरी भारत के विभिन्न भागों पर आक्रमण किये जाने के बावजूद भी हिन्दू शासकों तथा सामन्तों ने न तो उत्तर–पश्चिम सीमा की सुरक्षा का कभी एकजुट होकर प्रबन्ध किया और न ही बाह्य आक्रमणकारियों को भारत वर्ष की सीमा के बाहर ही उन्हें रोकने का प्रयास किया। यही कारण था कि गजनवियों को असुरक्षित सीमायें पार करने में निरन्तर सफलतायें मिलती रही। मुइज्जुद्दीन मोहम्मद बिन साम, जो कि मुस्लिम संसार तथा भारत के इतिहास में मोहम्मद गोरी के नाम से सुविख्यात् है, सुल्तान महमूद गज़नी से भिन्न था। उत्तरी भारत पर उसके आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य पूर्व में तुर्की साम्राज्य की स्थापना करना तथा बहुराज्य व्यवस्था को समाप्त कर तुर्कों के लिए एक छत्र साम्राज्य की स्थापना करना था। उसने सर्वप्रथम उत्तरी भारत में मुसलमानों के अन्तर्गत प्रदेशों जो कि किसी समय गजनवी साम्राज्य में थे को अधिकृत करने में सफलता प्राप्त की। उसने उच्छ पर आक्रमण किया वहाँ की रानी ने अपने पति

का वध कर दिया था जिससे सामन्तों व जनता में उसके प्रति आक्रोश था। उच्च अधिकृत करने के उपरान्त उसने कारमेथियनों के हाथों से मुल्तान छीन लिया। उच्छ व मुल्तान होते हुए मुहम्मद गौरी नहरवाला के शासक पर आक्रमण करने के लिए बढा। अनुभवहीन होते हुए भी हिन्दू शासक ने उसे पराजित कर वापस लौटने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् मुहम्मद गौरी नहरवाला के शासक पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। अनुभवहीन होते हुए भी हिन्दू शासक ने उसे पराजित कर वापस लौटने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् मुहम्मद गौरी ने पेशावर को विजित किया। इस प्रकार से सम्पूर्ण सिन्ध से लेकर देबल तक का प्रदेश उसके हाथों से मुल्तान छीन लिया। उच्छ व मुल्तान होते हुए मुहम्मद गौरी नहरवाला के शासक पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। अनुभवहीन होते हुए भी हिन्दू शासक ने उसे पराजित कर वापस लौटने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् मुहम्मद गौरी ने पेशावर को विजित किया। इस प्रकार से सम्पूर्ण सिन्ध से लेकर देवल तक का प्रदेश उसके हाथों में आ गया तथा विजेताओं को अत्यधिक धन सम्पदा प्राप्त हुई। इसके बाद मुहम्मद गौरी ने लाहौर पर आक्रमण किया वहाँ के शासक खुसरो मलिक ने यद्यपि उसका मुकाबला किया, किन्तु अन्त में वह लाहौर शहर व दुर्ग को विजित करने में सफल हुआ। खुसरो से सन्धि करने तथा सियालकोट में अपनी सेना छोड़ने के उपरान्त वह गज़नी वापस लौट गया। उसके पीठ फेरते ही खुसरो मलिक ने खोखरों की सहायता से लाहौर के दुर्ग की

घेराबन्दी की इसकी सूचना प्राप्त होते ही मोहम्मद गौरी ने गज़नी से लाहौर की ओर प्रस्थान किया और लाहौर पहुँच कर उसने खुसरो मलिक को धोखे से 1186 ई0 में बन्दी बना लिया और सुबुक्तगीन का वंश समाप्त कर दिया। तत्पश्चात् उसने मुल्तान के गवर्नर अली–ए–करमख के हाथों में सौंप दिया। इसी समय उसने शेष उत्तरी–भारत की राजनीतिक दशा का अवलोकन किया उसे ज्ञात हुआ कि मध्य भारत में अनेक शक्तिशाली राजपूत राज्य है, जिनमें पारस्परिक वैमनस्य है। तत्काल उसने राजपूत राज्यों को विजित करने का कार्यक्रम बनाकर सरहिन्द की ओर कूच किया और उसे विजित कर लिया। इस समय राजपूतों के शक्तिशाली राज्यों में कन्नौज का गहरवाड़ा राज्य, चौहानों का दिल्ली व अजमेर का राज्य, बिहार व बंगाल का पाल तथा सेन राज्य, गुजरात का बघेल राज्य, चन्देलों का जुझुकबुत्ती राज्य थे। इनमें से सबसे प्रख्यात एवं शक्तिशाली कन्नौज तथा दिल्ली के राज्य थे परन्तु अपने असीमित सैनिक साधनों के बावजूद गहरवालों तथा चौहानों में निरन्तर फूट बनी रही और वे आपस ही में संघर्ष करते रहे। उन्हीं को पहले तुर्कों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। दिल्ली व अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान ने अब तक अपनी वीरता साहस का प्रदर्शन कर सर्वश्रेष्ठ योद्धा व पराक्रमी शासक के रूप में ख्याति अर्जित कर ली थी वह अपनी विशाल सेना लेकर मुहम्मद गौरी के विरूद्ध बढ़ा। आगे होने वाले निर्णायक युद्ध में कन्नौज के शासक जयचन्द ने पृथ्वीराज चौहान की तनिक भी सहायता न की,

कारण यह कि उसने उसकी पुत्री का अपहरण कर लिया था। थानेश्वर के समीप स्थित तराईन के गाँव में 1191 ई0 में पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी से घमासान युद्ध लड़ा। जिसमें आक्रमणकारियों की पराजय हुई। मोहम्मद गौरी की सेना भाग खड़ी हुई। परन्तु शीघ्र ही अपने सैनिकों को एकत्र कर मोहम्मद गौरी अपनी पराजय का बदला लेने के लिए मैदान में उतर आया। परन्तु अपने परामर्शदाताओं की परामर्श पर उसने सिन्ध नदी पार की और वह स्वदेश वापस लौट गया। उसके पीठ फेरते ही राजपूत सेनाओं ने आगे बढकर 13 महीने तक सरहिन्द की घेराबन्दी की अन्त में दोनों पक्षों में सन्धि को गई और राजपूत वापस हो गये। गौर पहुँच कर मोहम्मद गौरी ने उन सभी अमीरों को दण्डित किया जो कि तराइन के मैदान से युद्ध के मध्य भाग खड़े हुए थे।

पृथ्वीराज चौहान द्वारा पराजित किये जाने का अपमान मोहम्मद गौरी कभी भूल न सका वह उससे बदला लेने के लिए दृढ़ संकल्पित था। वह अपनी सुसज्जित संगठित प्रशिक्षित सेना को लेकर 1192 में गज़नी से उत्तरी–भारत की ओर रवाना हुआ। कूच करता हुआ वह तराईन पहुँचा जहाँ उसने अपनी सेना सुसज्जित की उसके आगमन की सूचना पाकर पृथ्वीराज चौहान ने अपनी सैनिक तैयारियां प्रारम्भ की उसने अन्य राजपूत शासकों व सामन्तों से सहायता माँगी और विशाल सेना एकत्र करके वह मोहम्मद गौरी से युद्ध करने के लिए निकल पड़ा। तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान बुरी तरह से पराजित हुआ। वह

सिरसौती की ओर जान बचाकर भागा परन्तु उसे बन्दी बनाकर मौत के घाट उतार दिया गया। उसकी पराजय से राजपूत शक्ति को अत्यधिक आघात पहुँचा। तराइन के द्वितीय युद्ध के पश्चात् मोहम्मद गौरी अजमेर पहुँचा जहाँ उसने शहर को विध्वंस करके हजारों हिन्दुओं का नरसंहार किया और अजमेर का दुर्ग अपने अधिकार में ले लिया। तत्पश्चात् अजमेर पृथ्वीराज चौहान के पुत्र को इस शर्त पर सौंप दिया गया कि वह नियमित रूप से करद का भुगतान उसे करता रहेगा। उपर्युक्त अभियानों में आशातीत सफलतायें उपलब्ध करने के उपरान्त मोहम्मद गौरी अपने सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों में उत्तरी भारत में तुर्कों द्वारा अधिकृत प्रदेशों को सौंप कर गज़नी वापस लौट गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने मेरठ, कोल तथा दिल्ली को विजित कर लिया तथा दिल्ली में सैनिक छावनी स्थापित की। दिल्ली व अजमेर की विजय से उत्तरी भारत पर तुर्कों की पूर्ण विजय नहीं समझना चाहिए यह सत्य है कि मोहम्मद गौरी ने चौहानों की शक्ति छिन्न–भिन्न कर दी किन्तु अब भी कई राजपूत राज्य तुर्कों की चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध थे। दोआब में स्थित कन्नौज के राठौर शासक जयचन्द्र, जिसने तुर्कों के विरूद्ध पृथ्वीराज चौहान तथा राजपूत संघ के अन्य सदस्यों की सहायता न की थी, को अब उन्हीं तुर्कों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। जयचन्द्र अत्यधिक शक्तिशाली शासक था। उसके राज्य की सीमायें बनारस तक थी और उसकी राजधानी कन्नौज का अत्यधिक राजनीतिक व सामरिक महत्व था।

जयचन्द्र सम्भवतः इस आशा में था कि पृथ्वीराज चौहान की पराजय एवं मृत्यु के उपरान्त वह स्वयं उत्तरी भारत का सार्वभौम शासक हो जायेगा यह उसकी भूल थी। उत्तरी भारत पर तुर्कों की प्रभुता तथी स्थापित हो सकती थी जबकि राठौर शासक जयचन्द्र को पराजित कर दिया जाये। अतएव 1194 में मोहम्मद गौरी अपनी विशाल सेनाओं को लेकर जयचन्द्र के विरूद्ध रवाना हुआ। जयचन्द्र ने चन्दवार तथा इटावा के मध्य अपनी सेनायें तुर्कों से मुकाबला करने के लिए सुसज्जित की। मोहम्मद गौरी ने चन्दवार पहुँच कर जयचन्द से युद्ध किया जिसमें जयचन्द पराजित हुआ और वह मारा गया। तत्पश्चात् मोहम्मद गौरी ने अपनी सेनाओ के साथ असनी की ओर प्रस्थान किया जहाँ कि असनी के राय ने अपनी सम्पत्ति छिपा रखी थी। मोहम्मद गौरी ने असनी का दुर्ग विजित कर अत्यधिक धन सम्पदा अधिकृत कर ली। इसके पश्चात् तुर्कों ने बनारस को विजित कर लिया। बनारस विजित करने के उपरान्त मोहम्मद गौरी कोल पहुँचा। कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों में विजय का कार्य सौंप कर वह पुनः गज़नी वापस लौट आया।

उत्तरी भारत में कुतुबुद्दीन का कार्य संघर्ष पूर्ण तथा विजयों से भरा हुआ था। अजमेर का शासक जो कि गज़नी के आधीन था, को अन्य राजपूत हरिराय ने अजमेर से बाहर निकाल दिया परिणामस्वरूप कुतुबुद्दीन ऐबक अपनी विशाल सेनाओं के साथ अजमेर पहुँचा उसने हरिराय को युद्ध में पराजित कर अजमेर को

न केवल भूतपूर्व शासक के हाथों में सौंप दिया वरन् उस पर दृष्टि रखने के लिए वहाँ एक तुर्की गवर्नर की नियुक्ति भी कर दी। तत्पश्चात् कुतुबुद्दीन ऐबक अपनी सेनाओं को लेकर अजमेर से नहरवाला के शासक भीमदेव के विरूद्ध बढ़ा। उसने भीमदेव को युद्ध में पराजित किया। अपने इस सफल अभियान के समापन पर उसने ग्वालियर, बयाना तथा अन्य स्थानों पर अपनी प्रभुता स्थापित की और वहाँ के हिन्दू शासकों को गजनी की सम्प्रभुता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इसी काल में मोहम्मद गौरी के कुशल सेनानायक एवं योद्धा बख्तियार खिल्जी ने तुर्की सेनाओं का नेतृत्व करते हुए पूर्व की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। 1197 ई0 में उसने बिहार पर आक्रमण कर पाल वंश के शासक पर विजय प्राप्त कर वहाँ तुर्कों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। इस सफल अभियान के पश्चात् बख्तियार खिलजी कुतुबुद्दीन ऐबक के सम्मुख उपस्थित हुआ। ऐबक उससे अत्यधिक प्रसन्न हुआ उसने उसे अपनी ओर से सरोपा प्रदान किया। तत्पश्चात् बख्तियार खिलजी बिहार वापस लौट गया वहाँ उसने अपनी सेना एकत्र की और वह बंगाल को विजित करने के लिए चल पड़ा। बड़ी सफलतापूर्वक उसने बंगाल में प्रवेश किया और निर्विरोध वह सेन वंश की राजधानी लखनौती पहुँचा। तुर्की सेना के आने की सूचना पाते ही सेन शासक राय लक्षमन राजधानी छोड़कर भाग खड़ा हुआ। राय लक्षमण ढाका पहुँचा जहाँ से वह अनेक वर्षों तक दुर्बल शासक के रूप में शासन करता रहा। बख्तियार खिलज़ी ने लखनौती में अत्यधिक धन सम्पदा लूट में प्राप्त

की। बंगाल विजित करने के उपरान्त बख्तियार खिलजी ने मोहम्मद गौरी के नाम के सिक्के चलवाये तथा उसका नाम खुत्बा में पढ़वाया। इस प्रकार से बख्तियार खिलजी ने बिहार व बंगाल को विजित कर वहाँ तुर्कों का अधिपत्य स्थापित कर दिया।[8]

दूसरी ओर कुतुबुद्दीन ऐबक ने तुर्कों की विजय पताका लहरायी। 1202 ई0 में वह कालिंजर के परमार वंश के चन्देलों के विरूद्ध बढ़ा। उसने वहां के शासक को हराकर कालिंजर का दुर्ग अपने हाथों में ले लिया। पत्पश्चात् उसने काल्पी व बदायूँ आदि शहरों को विजित कर वहाँ तुर्कों की प्रभुता स्थापित कर दी। उसने अपने स्वामी मोहम्मद गौरी द्वारा साम्राज्य संस्थापन के कार्य को आगे बढ़ाकर अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय देकर सभी तुर्की की प्रभुता स्थापित कर दी। उसने अपने स्वामी मोहम्मद गौरी द्वारा साम्राज्य संस्थापन के कार्य को आगे बढ़ाकर अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय देकर सभी तुर्की सेनानायकों का विश्वास अर्जित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी।[9]

जहाँ तक मोहम्मद गौरी का प्रश्न था सुल्तान महमूद गज़नी की भाँति उसकी भी महत्वाकांक्षा थी कि वह पश्चिम में आक्सस नदी के उस पार के प्रदेशों को विजित कर गज़नी–गौर के साम्राज्य में मिलाये। यद्यपि सुल्तान महमूद गज़नी को पश्चिम के अभियानों में आंशिक सफलतायें ही मिली थी। किन्तु अपने साहसिक पूर्वी अभियानों की सफलताओं से प्रफुल्लित होकर मोहम्मद गौरी ने

पश्चिम मतें ख्वारिजम तथा खुरासान आदि को विजित करने की ओर ध्यान दिया। 1204 ई0 में ख्वारिज्म के शाह ने खुरासान के शासक की सहायता लेकर मोहम्मद गौरी का सामना करने का निर्णय लिया। ख्वारिज्म के शाह तथा उसके सहयोगियों ने मोहम्मद गौरी को युद्ध में पराजित किया। मोहम्मद गौरी युद्ध–स्थल से जान बचाकर भागा। इस निर्णायक युद्ध में पराजय से मोहम्मद गौरी को दूरगामी परिणाम देखने को मिले। इसी समय गज़नी का एक तुर्की अधिकारी भाग कर मुल्तान पहुँचा और उसने जाली शाही प्रपत्र दिखाकर मुल्तान को अपने अधिकार में ले लिया। गज़नी में मोहम्मद गौरी के दास ताजुद्दीन यलदौज ने गज़नी पर अपना अधिकार जमाकर मोहम्मद गौरी को वहाँ घुसने न दिया। पंजाब में खोखरों ने आतंक फैलाकर लूटमार प्रारम्भ की। इसी प्रकार से उत्तरी भारत में तुर्कों के आधीनस्थ सभी प्रदेशों में राजपूतों ने उनके विरूद्ध विद्रोह प्रारम्भ किये और अपनी खोयी हुई सत्ता को वापस लेने की चेष्टा प्रारम्भ की। परन्तु मोहम्मद गौरी इन घटनाओं से तनिक भी विचलित या भयभीत न हुआ। उसने गज़नी पर पुनः अपनी प्रभुता स्थापित की, मुल्तान को पुनः विजित किया और विद्रोही खोखरों का दमन किया। तत्पश्चात् वह अपने सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक की राजपूतों के विरूद्ध सहायता करने के लिए आगे बढ़ा। दोनों ने मिलकर विद्रोही खोखरों को पुनः युद्ध में पराजित किया। उसके बाद मोहम्मद गौरी तथा कुतुबुद्दीन ऐबक की संयुक्त सेनाओं ने लाहौर में पड़ाव डाला। कुतुबुद्दीन ऐबक को लाहौर में

छोड़कर मोहम्मद गौरी अपनी सेना के साथ गज़नी के लिए रवाना हुआ परन्तु विद्रोही खोखरों ने उससे अपना बदला ले ही लिया। जैसे ही वह मार्ग में दमयाक नामक स्थान पर पहुँचा वैसे ही मार्च 1206 में किसी मुलहिदा मतावलम्बी ने अपनी धर्मान्धता वश उसे मौत के घाट उतार दिया।

महमूद गज़नवी की भाँति मोहम्मद गौरी भी अपनी उदारता, दयालुता, कर्मठता, वीरता एवं सैनिक क्षमता के लिए सुविख्यात था उसने अनेक कवियों एवं साहित्यकारों को प्रश्रय देकर इस्लामी संस्कृति को जीवित रखा। महमूद गज़नवी की तुलना में वह न केवल सफल योद्धा वरन् कुशल प्रशासक भी था। उत्तरी भारत की दयनीय राजनीतिक दशा ने उसे यहाँ तुर्की साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। बहुराज्य व्यवस्था को नष्ट करने के साथ ही साथ उसने नवविजित प्रदेशों में तुर्की गवर्नरों की नियुक्तियाँ की। उसने तुर्की अमीरों को अक्तायें अथवा जागीरें इस आशय से प्रदान की कि वे न केवल अपनी अक्ताओं अथवा जागीरों में भूराजस्व ही वसूल करें वरन् तुर्की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने में उसकी सहायता करें। साम्राज्य संस्थान में उसके विचार सुनियोजित तथा व्यवहारिक थे। वह भली–भाँति जानता था कि गज़नी व गौर से उत्तरी–भारत पर शासन करना असम्भव होगा। अतएव नवस्थापित साम्राज्य के प्रशासन के लिए उसने लाहौर व दिल्ली में सैनिक छावनियाँ स्थापित थी। इसके विपरीत महमूद गज़नवी का लक्ष्य केवल उत्तरी भारत से हाथी व धन सम्पदा प्राप्त करना

ही था। अरबवासियों की भाँति उसने उत्तरी भारत के उन प्रदेशों पर ही अपनी प्रभुत्ता स्थापित की जो कि उत्पादक नहीं थे। यह सत्य है कि उसकी मृत्यु के बाद गज़नी का राज्य छिन्न–छिन्न हो गया परन्तु उत्तरी–भारत में उसकी उपलब्धियों को कुतुबुद्दीन ऐबक ने नवीन रूप–रेखा प्रदान कर उसके नाम को जीवित रखा। निःसन्देह मोहम्मद गौरी ने ही उत्तरी–भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना की नींव डाली।[10]

इससे पूर्व तुर्कों के उत्तरी–भारत पर आक्रमण के समय वहाँ की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दशा का सिंहावलोकन किया जा चुका है। यद्यपि उसकी पुरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु यह कहना अनिवार्य है कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी में विभिन्न राज्यों में बँटा हुआ था। काश्मीर, पंजाब, मुल्तान, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, गुजरात, मालवा, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, कालिंजर, बिहार तथा बंगाल के शासकों को केवल अपने ही राज्यों से मतलब था। पारस्परिक पारिवारिक तथा व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण उनमें एकता का अभाव था और उनमें से किसी को भी उत्तरी–पश्चिमी सीमा की सुरक्षा करने का ध्यान न था। वे निरन्तर उत्तरी भारत में अपनी सार्वभौम शक्ति स्थापित करने में ही लगे रहे परिणाम स्वरूप न उन्होंने मुस्लिम संसार में होने वाले द्रुतगामी परिवर्तनों को जानने की चेष्टा की और न ही बदलती हुई परिस्थितियों में एकता के महत्व को समझने की चेष्टा की। दूसरे, उन्हीं के

राज्यों में कुशासन, सामन्तों में पारस्परिक द्वेष व संघर्ष दीर्घकाल तक बने रहने के कारण बहुराज्य व्यवस्था खोखली हो चुकी थी। देशी राज्य बाह्य चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए सक्षम न थे। तीसरे, राजपूत शासकों की सैनिक व्यवस्था दोष–पूर्ण थी वे पूर्णतः हाथियों तथा पैदल सैनिकों की संख्या, ढाल, तलवार व भालों के प्रयोग पर ही निर्भर रहते है। ज्ञातव्य है कि युद्ध में विजय कम से कम समय में मार्ग की दूरी तय करने तथा सुनियोजित युद्ध–युक्ति पर निर्भर करती है। राजपूत शासकों के हाथियों, असंख्य पैदल सैनिकों तथा परम्परागत युद्ध–शक्ति ने ही उन्हें अत्यधिक क्षति पहुँचाई। इसके विपरीत तुर्को की नवीन युद्ध–शक्ति तथा अश्वारोहियों में अडिग विश्वास ने उन्हें निरन्तर सफलता दिलवाई। अपनी छोटी व्यवस्थित तथा प्रशिक्षित सेना की तुर्की शासक निरन्तर गति प्रदान करते रहे और जिस प्रकार से वे चाहते अपने अश्वारोहियों का प्रयोग युद्ध–स्थल में करते रहे। यही नहीं, राजपूत शासक अथवा सेनाध्यक्ष के युद्ध–स्थल में हताहत होने पर राजपूत सेना में भगदड़ मच जाना तथा सेना का छिन्न–छिन्न हो जाना सामान्य बात थी परन्तु तुर्की शासक व सेनाध्यक्ष के हताहत होने पर भी युद्ध निरन्तर चलता रहता था। राजपूत प्राण उत्सर्ग करना जानते थे परन्तु लड़ना नहीं जानते थे। उनके सैनिकों में उतना धार्मिक उन्माद न था कि जितना कि तुर्क शासकों के सैनिकों में। हालांकि पौरुष, पुरुषार्थ, वीरता, साहस तथा निष्ठा में राजपूत तुर्की से किसी भी भाँति कम न थे उनमें अन्तर केवल इतना से नहीं।

इसके अतिरिक्त राजपूत शासकों की सेना में सबसे बड़ी कमी प्रशिक्षण की ही नहीं वरन् भातृत्व की थी प्रत्येक राजपूत अपना दैनिक कार्य समाप्त कर स्वयं भोजन की व्यवस्था करता था, बर्तन साफ करता था और खा पीकर युद्ध के मैदान में उतरता था। वे जाँति–पाँति, ऊँच–नीच की भावना से ग्रस्त थे, इसके विपरीत तुर्कों में इस्लाम ने समानता व भातृत्व की भावना प्रदान की। फलतः उनके लिए भोजन की उपयुक्त व्यवस्था करना तुर्क शासक अथवा सेनानायक की थी। भोजन की चिन्ता न रहने पर तुर्की सैनिक अपने अस्त्र–शस्त्रों की व्यवस्था करने निकटवर्ती प्रदेशों को लूटकर खाद्यान्न व चारे की व्यवस्था करने एवं युद्ध–स्थल में अपने स्थान पर पहुँचने में लगाते थे। राजपूत शासकों की तुलना में तुर्कों की गुप्तचर व्यवस्था प्रशंसनीय थी। चौथे, भारतीय समाज विभाजित ही नहीं था वरन् उसमें देश व धर्म की रक्षा करने का दायित्व केवल क्षत्रियों अथवा राजपूतों पर ही था। समाज के अन्य वर्गों, ब्राह्मणों, वैश्यों, शूद्रों को अस्त्र–शस्त्र ग्रहण करने की अनुमति न थी। अतएव देश की रक्षा का भार समाज के केवल एक ही वर्ग पर था जिसमें सतीप्रथा तथा जौहर जैसी अनेक कुप्रथायें विद्यमान थीं। पाँचवे, इस्लाम उदारता, एकेश्वरवाद, समानता, भातृत्व में ही विश्वास करता था। उत्तरी–भारत में प्रचलित धर्मों तथा मतों में कोई भी ऐसा न था जो कि सम्पूर्ण हिन्दू जाति को एकता के सूत्र में बांध सके और सभी देशवासियों को देश की रक्षा करने की प्रेरणा दे सके। सभी धर्मों में बाह्य आडम्बरों के अतिरिक्त अनेक कुप्रथायें

थीं जिसके कारण हिन्दुओं ने अपनी रक्षा का भार देवी–देवताओं पर छोड दिया था। संक्षेप में धार्मिक उन्माद के अभाव में वाह्य आक्रमणकारियों से उत्तरी भारत की रक्षा न हो सकी। इस प्रकार से तुर्कों की उत्तरी भारत पर विजय तथा राजपूतों की पराजय के विविध राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कारण थे।[11]

पिछले लगभग 200 वर्षों में (1000–1200ई0) तुर्क आक्रमणकारी उत्तरी भारत के हिन्दू समाज के उच्च वर्गों के सम्मुख अच्छी छवि प्रस्तुत न कर सके। उनके द्वारा राजपूत राज्यों पर आक्रमण करना, हिन्दू मन्दिरों तथा बौद्ध विहारों को विध्वंस करना तथा हिन्दू समाज के निम्न वर्गों को इस्लाम की ओर आकृष्ट कर उन्हें अपने धर्मावलम्बियों में सम्मिलित करना, राजपूतों व ब्राह्मणों को खटकता रहा। परन्तु तुर्को द्वारा उत्तरी भारत पर आक्रमण करना महत्वहीन न था। उनकी दृष्टि में उत्तरी भारत भौगोलिक इकाई थी। उनका लक्ष्य केवल राजपूत राज्यों को पराजित कर बहुराज्य व्यवस्था को समाप्त कर इस भौगोलिक इकाई में एकछत्र साम्राज्य की स्थापना करना ही नहीं वरन् राजपूत राज्यों व हिन्दू मन्दिरों से संचित धन सम्पदा प्राप्त करना था। ज्ञातव्य है कि राजपूत शासकों तथा सामन्तों के मध्य पारस्परिक संघर्षो, वैमनस्य एवं द्वेष के कारण हिन्दू समाज के अन्य वर्गों में त्राहि–त्राहि मची हुई थी। हिन्दू समाज के निम्न वर्ग के सम्मुख पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए केवल एक ही विकल्प था कि वे तुर्क आक्रमणकारियों के पक्ष में रह कर राजनीतिक परिवर्तनों को तटस्थ एवं मूकदर्शक होकर देखते

रहे। इसके अतिरिक्त तुर्क आक्रमणकारी उनके लिए इस्लाम में निहित एकता, समानता तथा भातृत्व के विचार लेकर आये। इस्लाम ग्रहण करने के उपरान्त राजपूत शासक वर्ग द्वारा किये जाने वाले शोषण तथा ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड एवं उनके द्वारा थोपे गये बाह्य आडम्बरों से मुक्ति मिलने की उन्हें आशा थी। ऐसी परिस्थितियों में गौरियों द्वारा उत्तरी भारत की विजय का विशेष राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक महत्व था। तुर्को ने उत्तरी भारत में बहुराज्य व्यवस्था समाप्त कर दी। उन्होनें सदियों से चली आई पुरातन सामाजिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। इस पुरातन सामाजिक व्यवस्था में क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता थी जो कि उन्होनें राजपूतों के राज्यों को विजित कर तथा हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर समाप्त कर दी। पिछली कई शताब्दियों में मुसलमान प्रवासियों के भारत में आगमन के कारण समाज बहुजातिय, बहुभाषीय तथा बहुरंगीय हो गया। तुर्क–आक्रमणकारियों ने उत्तर–पश्चिम में स्थिति द्वारों को खोल कर उत्तरी भारत का सम्पर्क पुनः सिन्ध नदी के उस पर के देशों, ईरान तथा मध्य–एशिया से पुनः स्थापित करवा दिया। अभी तक पिछली कई शताब्दियों से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्पर्क टूटे हुए थे। उत्तरी भारत तथा सिन्धु नदी के उस पार के निवासियों की नितान्त आवश्यकता थी कि इस प्रकार के सम्पर्क पुनः स्थापित हो जिससे कि व्यापारी ही नहीं वरन् जनता लाभान्वित हो। उत्तर भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना के उपरान्त व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क

अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुए। मुसलमान संसार के विभिन्न देशों के व्यापारियों को उत्तरी भारत में नये बाजार मिले और उत्तरी–भारत के व्यापारियों को ईरान तथा मध्य–एशिया में नये बाजार मिले। उत्तरी भारत के दार्शनिक विचारक ज्योतिषशास्त्री, खगोलशास्त्री, मुसलमान देशों में जाकर वहाँ के लोगों का ज्ञानवर्धन करने लगे तथा वहाँ के धर्मशास्त्री, विचारक, साहित्यकार, दार्शनिक आदि उत्तरी भारत में समय–समय पर आकर अपने योगदान द्वारा जन–मानस को प्रभावित करते रहे।[12] अन्य शब्दों में यहाँ मिली–जुली हुई संस्कृति पल्लवित हुई। यही नही धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इस्लाम ने हिन्दू–धर्म को प्रभावित किया। जिसमें भक्ति की विचारधारा को बल मिला। तुर्कों के आक्रमणों के परिणामस्वरूप यहाँ नगरीकरण का विकास हुआ और श्रमिक क्रान्ति हुई जिससे हिन्दू समाज का ताना–बाना आर्थिक परिवर्तनों के कारण धीरे–धीरे परिवर्तित हो गया। संक्षेप में उत्तरी–भारत पर गोरियों की विजय केवल महत्वपूर्ण घटना न थी।

भारत वर्ष में तुर्की शासन सन् 1206 ई0 में स्थापित हुआ। इन तुर्कों को इल्बारी तुर्क भी कहते हैं। यह वंश 'गुलाम वंश' के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु यह नामकरण भ्रान्तिपूर्ण है। क्योंकि इस वंश के प्रमुख शासकों ने गद्दी पर बैठने के पूर्व ही गुलामी से मुक्ति पा ली थी। इस प्रकार इन्हें 'गुलाम वंश' न कहकर 'इल्बारी' या 'मामलुक' वंश कहा जा सकता है। इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण

शासक इल्तुतमिश को माना जाता है जिसने चालीस अमीरों के एक दल का भी गठन किया था जिसे तुर्कान–ए–चलगानी कहा जाता है। इसी ने सर्वप्रथम गुलाम वंश में मुद्रा चलाने का कार्य किया था। इसी कारण इल्तुतमिश को गुलामवंश का सार्वभौम संस्थापक माना जाता है। इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत को नवजीवन प्रदान किया तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिए विरासत में एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित साम्राज्य छोड़ गया। सन् 1236 ई0 में इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त रजिया गद्दी पर बैठी। इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम परम्परा से हट कर अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था क्योंकि रजिया ही उसके पुत्र–पुत्रियों में सर्वाधिक योग्य थी, अर्थात् योग्यता के आधार पर रजिया की नियुक्ति हुई और उस समय उसके दरबारियों ने इल्तुतमिश के इस कार्य का समर्थन किया था। किन्तु इल्तुतमिश के मृत्योपरान्त वे रजिया के विरूद्ध षड्यन्त्र करने लगे और अन्त में सन् 1240 ई0 से एक षड्यन्त्र के द्वारा रजिया को पदच्युत कर उसका वश करवा दिया गया। उत्तर भारत में सम्भवतः मध्ययुग में यही प्रथम और अन्तिम उदाहरण है, जबकि एक स्त्री को शासिका के रूप में गद्दी प्राप्त हुई, किन्तु सरदारों ने उसकी सत्ता स्वीकार नहीं किया। रजिया के पश्चात् बहरामशाह (1240–42 ई0) अलाउद्दीन मसूदशाह (1242–46 ई0) एवं नासिरुद्दीन महमूद (1246–66 ई0) दिल्ली की गद्दी पर बैठे। नासिरूद्दीन के मृत्योपरान्त गयासुद्दीन बल्बन गद्दी पर बैठा। बल्बन ने राज्य और शासक की प्रतिष्ठा में

अभूतपूर्व वृद्धि करने की चेष्टा की और राजत्व के दैवी सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की। बल्बन के काल में दिल्ली सुल्तानों का गौरव बढ़ा और साम्राज्य का विस्तार हुआ तथा बल्बन अपने समस्त शत्रुओं का दमन करने में सफल हुआ। बल्बन के मृत्योपरान्त योग्य उत्तराधिकारियों के अभाव में इल्बारी वंश का पतन हो गया।

इल्बारी वेश के पश्चात् सन् 1290 ई0 में खल्जी वंश की स्थापना हुई, जिसने सन् 1290 से 1320 ई0 तक शासन किया। इस वंश का संस्थापक जलालुद्दीन फीरोज खल्जी (1290–96 ई0) था। इसके पश्चात् सबसे विख्यात अलाउद्दीन खल्जी (1296–1316 ई0) ने शासन किया। अलाउद्दीन खल्जी ने भी निरंकुशता के आधार पर शासन किया। अलाउद्दीन खल्जी ने धर्म के राजनीति तथा प्रशासन में हस्तक्षेप को वर्जित कर दिया तथा राजत्व–सिद्धान्त को पुनः सेना व पुलिस के बल पर उच्च धरातल पर स्थापित करने का प्रयत्न किया। अलाउद्दीन का साम्राज्य सुदूर दक्षिण में भी फैल गया। इस साम्राज्य–विस्तार में उसके सुयोग्य तथा कुशल सेनापति मलिक काफूर का सराहनीय योगदान रहा। ऐसे निरंकुश शासन तभी स्थायी रह सकते हैं, जब शासक योग्य व शक्तिशाली हो। परन्तु अलाउद्दीन खल्जी के पश्चात् कोई योग्य उत्तराधिकारी न हुआ। फलतः सन् 1320 ई0 में एक बिप्लव के द्वारा गाजी मलिक या गयासुद्दीन तुगलक ने खल्जी वंश का समापन कर दिया तथा तुगलक वंश की स्थापना की, अर्थात योग्यता का मापदण्ड शक्ति ही थी और इसी कारण सल्तनतकाल में वंश–परिवर्तन

होते रहे।

तुगलक वंश ने सन् 1320–1414 ई0 तक शासन किया। इस वंश में गयासुद्दीन तुगलक (1320–25 ई0), मुहम्मद तुगलक (1325–51 ई0) एवं फीरोजगशाह तुगलक (1351–88 ई0) आदि महत्वपूर्ण शासक हुए। मुहम्मद तुगलक इन सभी सुल्तानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद तुगलक ने भी राजनीति में धर्म के हस्तक्षेप को वर्जित रखने का प्रयत्न किया। इसी कारण मुहम्मद तुगलक ने प्रारम्भ में खलीफा की मान्यता नहीं प्राप्त किया। जबकि खलीफा की मान्यता समस्त मुस्लिम साम्राज्य के शासकों के लिए आवश्यक थी। मुहम्मद तुगलक की सभी महत्वाकांक्षी योजनाएं जन–प्रचार के अभाव में विफल हो रही थीं, उधर जनता और शासक के मध्य वैमनस्य बढ़ता जा रहा था। परिणामतः मुहम्मद तुगलक विफल रहा। अन्त में उसने खलीफा से मान्यता प्राप्त करना चाहा किन्तु इसी बीच थट्टा में उसकी मृत्यु हो गई और फीरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। यह प्रजा के हितों को सुरक्षित रखना चाहता था। परन्तु इसके काल में साम्राज्यवादिता के अतिरिक्त धर्म का प्रभाव अधिक था। फीरोज ने बड़ी संख्या में बाग, सराय आदि जन–कल्याण कार्यों का निर्माण करवाया। फीरोज के उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य सिद्ध हुए तथा उनके आपसी संघर्ष ने साम्राज्य को विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया। तुगलक वंश के पश्चात् दिल्ली सल्तनत पर सैय्यद वंश का शासन स्थापित हुआ जिसने सन् 1414 ई0 से सन्

1451 ई0 तक शासन किया। इस वंश में क्रमशः निम्न शासकों ने शासन किया–खिज्र खॉं (1414–21 ई0), मुबारक शाह (1421–34 ई0), मुहम्मद शाह (1434–45 ई0) एवं अलाउद्दीन आलम शाह (1445–51 ई0)। सैय्यद वंश का प्रभाव शून्य ही रहा। इसके पश्चात् बहलोल लोदी ने लोदी राजवंश की स्थापना की, जिसने सन् 1451 इ0 से सन! 1526 ई0 तक शासन किया। इस अवधि में बहलोल लोदी (1451–89 ई0), सिकन्दर लोदी (1489–1518) एवं इब्राहीम लोदी (1518–26 ई0) गद्दी पर बैठे। सन् 1526 ई0 में में पानीपत के प्रथम युद्ध में अन्तिम लोदी सुल्तान इब्राहीम लोदी को जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर ने परास्त करके दिल्ली सल्तनत का समापन कर मुगल वंश की स्थापना कर दी। इस प्रकार सन् 1206 ई0 से लेकर सन् 1526 ई0 तक अर्था 320 वर्षो के शासन के उपरान्त दिल्ली सल्तनत का पतन हुआ। यद्यपि सन् 1540 में शेरशाह सूरी ने दिल्ली सल्तनत के द्वितीय राजत्व की स्थापना की सूर वंश स्थापित किया। परन्तु सन् 1556 ई0 में सूर वंश के पतनोपरान्त दिल्ली सल्तनत का सदैव के लिए अन्त हो गया और मुगल साम्राज्य की दृढ़ता से स्थापना हो गई। भारत के इतिहास में दिल्ली सल्तनत का युग सन् 1206 से 1526 ई0 तक ही माना जाता है।

सन् 1526 ई0 का वर्ष मध्यकालीन भारतीय इतिहास में दिल्ली सल्तनत के पतन और मुगल साम्राज्य के संस्थापन का वर्ष था। अकबर के उत्कर्ष ने मुगल साम्राज्य को वह सुदृढ़ आधार प्रदान किया जिसके कारण ही लगभग तीन सौ

वर्षों तक मुगलों ने भारत पर राज्य किया। वास्तव में मुगल साम्राज्य का वास्तविक विकास अकबर के ही काल से प्रभावी रूप से प्रारम्भ होता है जो औरंगजेब के काल तक निर्वाध गति से चलता रहा।

मध्य कालीन इतिहास का द्वितीय काल खण्ड सन् 1526 ई0 से शुरू होता था। यह काल भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त प्रतिभाशाली युग का इतिहास है। सन् 1526 ई0 के बाबर ने लौदी सुल्तान इब्राहिम लोदी को प्रथम पानीपत के युद्ध के परास्त कर भारतीय इतिहास में एक नवीन युग तथा दिल्ली के सिंहासन पर एक नवीन राज वंश की स्थापना की थी।

तत्कालीन संसार के अन्य साम्राज्यों में मुगल साम्राज्य कदाचित सबसे बड़ा एवं शक्तिशाली साम्राज्य था जिसकी उपलब्धि न केवल कला एवं संस्कृति के क्षेत्रों में वरन् एक सोत्साही सुंसगठित राजनीतिक व्यक्तित्व की संरचना तथा हिन्दू और मुसलमान सेनाओं को एक राष्ट्र के अन्तर्गत सूत्रबद्ध करने में उसके विशाल नैतिक एवं भौतिक साधनों के अनुरूप थी।

भारतीय इतिहास में मुगल काल एक स्मरणीय युग है जिसका इतिहास दोनों भागों में विभाजित किया जा सकता है सन् 1526 से सन् 1707 ई0 तक सन् 1707 से 1761 ई0 तक सन् 1526 से 1707 तक का काल प्रतिष्ठा एवं वैभव का काल था तथा सन् 1707 के उपरान्त मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख होकर विखर हो गया। सन् 1761 ई0 मुगल इतिहास की एक महत्वपूर्ण तिथि है क्योंकि तृतीय

पानीपत के युद्ध के पश्चात मुगल साम्राज्य का इतिहास वास्तव में समाप्त हो जाता है। इसके उपरान्त स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हुई मुगल राजधानी उजड गयी और अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर को 1857 ई0 के बाद पदच्युत कर रंगून भोज दिया गया, भारतीय रंगमंच पर ब्रिटिश राजनैतिक शक्ति का उदय हुआ। इस प्रकार औरगंजेब के पश्चात् जो मुगल बादशाह गद्दी पर बैठे वे नाममात्र के सम्राट थे मुगल काल के अन्तिम शासक बहादुरशाह जफर का तृतीय पानीपत के युद्ध के लगभग सौ वर्ष पश्चात् 1862 ई0 में रंगून में देहान्त हो गया। इसीलिए वास्तव में एलफिस्टन के अनुसार मुगल साम्राज्य का इतिहास सन् 1761 ई0 में समाप्त हो जाता है। संक्षेप में सम्पूर्ण मुगल काल का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

भारत में मुगल साम्राज्य का संस्थापक जहरद्दीन मोहम्मद था जिसका उपनाम बाबर था, वह बाबर के नाम से ही प्रसिद्ध हुआ। बाबर का जन्म 14 फरवरी 1483 ई0 को फरगना में हुआ था, बाबर के पिता का नाम उमरशैख मिर्जा तथा माता का नाम कुतलुग निगार खानम था। बाबर की धमनियों में मध्य युग के दो सर्वश्रेष्ठ विजेताओं और साम्राज्य निर्माताओं का रक्त प्रवाहित था। माँ की ओर से वह चंगेज खां का वंशज था और पिता ओर से तैमूर लंग था। पिता की मृत्यु के पश्चात जिस समय बाबर सिंहासन पर बैठा था उस समय बाबर की आयु मात्र ग्यारह वर्ष चार माह और आठ दिन थी। इस अल्पवस्था में ही बाबर

के जीवन में संघर्षो का काल प्रारम्भ हो गया था।

बाबर ने अपना प्रथम अभियान पन्द्रह वर्ष की आयु में समरकन्द की ओर किया। किन्तु समरकंद पहुँचने पर संधि हो गयी और बाबर लौट आया। उसकी इस प्रारम्भिक सफलता के सम्बन्ध में समकालीन लेखकों के उसके शौर्य और साहस की भूरिशः प्रशंसा की। इस प्रथम अभियान के बाद से अभियानों और युद्धों का जो सिलसिला शुरू हुआ तो वह जीवन पर्यन्त चलता रहा। बाबर की आत्मकथा बाबर नामा के स्पष्ट विवरण से ज्ञात होता है कि मध्य युग में मानव जीवन संघर्षमय युद्धमय और मारकाट का जीवन था। इसी प्रकार के जीवन में बाबर का जन्म हुआ था तथा इसी वातावरण में उसके जीवन का विकास हुआ था तथा इसी वातावरण में उसके जीवन का विकास हुआ था। यह वातावरण इतना दूषित था कि रिश्तेदार तथा सगेसम्बन्धी भी एक दूसरे पर आक्रमण करते थे। यही प्रवृत्ति बाबर की थी और काबुल की सफलता ने उसकी इस अभिलाषा की और उत्तेजित किया। परिणामतः बाबर की दृष्टि भारत की ओर पड़ी जहाँ उसे सफलता की सम्भावना अधिक दिखायी पड़ी। अन्तोगत्वा सन् 1526 ई0 में बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर भारत में मुगल सम्राट की स्थापना की। बाबर ने भारत पर लगभग साढ़े चार सौ वर्षो तक शासन किया। अन्त में दिसम्बर सन् 1530 में बाबर की मृत्यु हो गयी।[13]

बाबर ने भारत पर आक्रमण के समय सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में भारत

की राजनीतिक पूर्णतः समाप्त हो चुकी थी समस्त उत्तरी भारत विभिन्न इकाइयों में विभाजित हो चुका था। केन्द्रीय सत्ता एवं स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों के बंधन शिथिल पड़ गये थे। वास्तव में भारत की राजनीतिक दशा इतनी क्षीण थी कि कोई भी सुसंगठित विदेशी शासक भारत पर आक्रमण करके अपनी सत्ता स्थापित कर सकता था जिसका पूरा लाभ बाबर ने उठाया तथापि इसका यह अर्थ नहीं कि समस्त भारत में अराजकता विद्यमान थी बंगाल जौनपुर मालवा गुजरात तथा राजपूताना के राज्य न केवल सामारिक और आर्थिक दृष्टि कोण से सम्पन्न थे अपितु राजनीतिक दृष्टि में भी सम्पन्न थी और सुंसठित थे। किन्तु समस्त राज्य उत्तर पश्चित सीमान्त की राजनीति से पृथक थे। इसी प्रकार दक्षिणी भारत की दशा भी असन्तोषजनक थी मुहम्मद तुगलक के शासन काल में दक्षिण में उदित दोनों शक्ति शाली साम्राज्य विजय नगर तथा बहमनी साम्राज्य परस्पर युद्धों में संलग्न होने के कारण न केवल दुर्बल हुये बल्कि वे भी उत्तर भारत की राजनीति के प्रति उदासीन थे। बाबर ने बहमनी राज्य की अराजकता का वर्णन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक बाबरनामा में किया है।[14]

बाबर के बाद उसका प्रिय पुत्र नासिरूद्दीन हुमायू गद्दी पर बैठा हुमाये का जन्म 6 मार्च सन् 1508 ई0 को काबुल में हुआ था। वह कला और संस्कृति का अनन्य प्रेमी था। वह एक कुशल सेनापति था तथा बाबर के काल में अनेक महत्वपूर्ण अभियानों का नेतृत्व भी हुमायू ने किया था 26 दिसम्बर 1530 में बाबर

थी मृत्यु के उपरांत भारत का सम्राट बना। सन् 1530 से 1533 तक का साल हुमायूं के लिए शांति का काल था। 1533 के बाद से ही हुमायू का संघर्ष काल शुरू हुआ। उसे अनेक भाइयों ही नहीं बहादुरशाह जैसे शक्तिशाली शासक और शेरशाह जैसे कुशल कूटनीतिज्ञ का सामना करना पड़ा और अन्त में 1540 ई0 में शेरहशाह में हाथों पराजित होकर भारत से पलायन करना पड़ा। इस पराजय में भारत में हुमायूँ के प्रथम राजस्व की समाप्ति की घोषणा कर दी और सत्ता पुनः अफगानो के सिर पर राजमुकुट रख दिया हुमायूं साम्राज्य से निष्कासित हो गया तथा पन्द्रह वर्ष तक भटकता रहा। परन्तु हुमायूं ने एक बार फिर सत्ता प्राप्त करने प्रयत्न किया। अंत में अनूकूल परिस्थितियों में 23 जुलाई सन 1556ई0 में हुमायू पुनः दिल्ली का सम्राट बना। परन्तु यह हुमायूं का दुर्भाग्य ही था कि भारत में द्वितीयराजत्व का सुख भोगने से पूर्व ही 27 जनवरी सन 1956ई0 को उसकी मृत्यु हो गयी।[15]

वास्तव में हुमायूं शांति युग का सम्राट था यदि उसे अपने पिता द्वारा संगठित साम्राज्य प्राप्त हुआ होता तो उसने अपनी सृजनात्मक शक्ति द्वारा मुगल साम्राज्य का एक आदर्श चित्र प्रस्तुत किया होता परन्तु उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य उसकी अपार वाह्य एवं आंतरिक कठिनाइयां थी उसकी असफलताओं का उत्तरदायित्व परिस्थितियों बाबर द्वारा छोड़ी गयी समस्याओं, उनके शत्रुओं की प्रबलता भाइयों तथा सम्बन्धियों का असहयोग एवं विद्रोही अफगान जागरण तथा

उसके कुछ व्यक्तिगत दोषों पर भी है। परन्तु अर्सकिन का यह कथन कि यदि हुमायू कुछ दिन और जीवित रहता तो मुगल साम्राज्य का पतन हो जाता अतार्किक है। इसके अतिरिक्त मुगल काल का महत्व मात्र उसकी विजयों या शासन व्यवस्था के कारण नहीं अपितु संस्कृति के प्रोत्साहन विकास और उपयोगी नीतियों पर है। मुगल काल साहित्य एवं कला के भिन्न भिन्न अंगों के विकास काल था तथा इसी काल में शांति एवं सहिष्णुता की नीतियों का विकास हुआ। हुमायूं ने मुगल काल के इन समस्त अंगों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। वह चित्रकला का जन्मदाता साहित्य का उच्च कोटि का प्रोत्साहन तथा धार्मिक सहिष्णुता का पथ प्रदर्शक था। ये मुगलकाल के स्थाई स्तम्भ थे। मृत्यु से पूर्व ही हुमायूं ने सांस्कृतिक साहित्यिक तथा धार्मिक सहिष्णुता का बीजा रोपण कर दिया था जिसे अकबर ने अपने बुद्धि बल से विकसित कर पुष्ट किया।

सूर वंश का महान शासक और शाह सूरी मध्य युग की महान विभूतियों में से एक था जिनकी कीर्ति और प्रतिभा भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय है। उसने अपने राजनीतिक जीवन का प्रारम्भ बहुत ही निम्न स्तर से प्रारम्भ किया और उन्नति करते करते भारत के सर्वोच्च पद पर पहुंच गया था। वह न ही उच्च राज वंश का था और न ही उच्च जाति का इसके बावजूद शेरशाह भारत का सम्राट बन गया। शेरशाह ने सन 1540 तक भारत पर राज्य किया। शेरशाह अपनी विजयों के कारण नहीं बल्कि प्रशासनिक सुधारों विशेषकर भू–राजस्व

सुधारों के लिए इतिहास प्रसिद्ध हो गयी।

शेरशाह के मृत्योपरान्त उसके पुत्रों में सत्ता के लिए संघर्ष हुआ शेरशाह के दो पुत्र आदिलखान जलालखान, जिसमें से जलालखान गद्दी पर बैठा और इस्लामशाह की पदवी धारण की। सन 1553 के इस्लाम शाह की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात सिकन्दर सूरी गद्दी पर बैठा परन्तु 1555 में हुमायूं ने सिकंदर सूर को परास्त कर अफगानों के राज्य का अंत कर दिया।[16]

सूर वंश के शासकों ने पन्द्रह वर्षों तक शासन किया पांच वर्षों तक शासन करने के उपरान्त शेरशाह की 22 मई 1545 ई0 में मृत्यु हो गीय। शेरशाह के पश्चात इस्लाम शाह से लेकर सिकन्दर शाह तक उसके समस्त उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुये। शेरशाह के मृत्योपरान्त राजदरबारों षडयंत्रों का केन्द्र बन गया। साम्राज्य की शक्ति शिथिल पड़ने लगी। तथा अमीरों ने विद्रोह करना पारम्भ कर दिया। ऐसी परिस्थितियों में हुमायूं ने पुनः सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया और सन 1555 ई0 में एक विशाल सेना के साथ भारत की और प्रणाम किया। शीघ्र ही रोहतास तथा लाहौर पर अधिकार करने के बाद दिल्ली का तश्त हासिल कर लिया इसी के साथ हुमायूं ने अन्तिम सूर शासक सिकन्दर सूर को परास्त कर द्वितीय अफगान राजस्व का अंत कर भारत में मुगल साम्राज्य की दृढ़ता से स्थापना कर दी। वास्तव में हुमायूं की असफलता का मुख्य कारण शेरशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी थे जिन के समय में शेरशाह द्वारा व्यवस्थित

राज्य छिन्न भिन्न हो चुका था और जिन पर हुमायूं ने सरलता से अपना अधिकार कर लिया था।

शेरशाह का जीवन संघर्षो का जीवन था। शेरशाह के सुधारों की सराहना लगभग सभी इतिहासकार करते हैं। डा0 राम प्रसाद त्रिपाठी, एडवर्ड टामस, डा0एस0आर0 शर्मा, परमात्मा सरन, प्रो0 कानूनगो आदि सभी इतिहासकार शेरशाह द्वितीय अफगान साम्राज्य के निर्माता थे। उनहोंने अफगान जाति को एक बार फिर संगठित कर एक सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना की लेकिन सम्पूर्ण केन्द्रीयकरण और राजनीतिक नीति के स्थायित्व के अभाव में वे सफल न हो सके। उन्होंने किसी ऐसी संस्था के निर्माता का प्रयत्न नहीं किया जो उनके पश्चात साम्राज्य की एकता का आधार बन सके। उनके प्रति लोगों की श्रद्धा एवं स्वामी भक्ति.प्रेम से नहीं बल्कि बल में निर्धारित थी किन्तु शेरशाह का काल अत्यल्प था। और अगर वह कुछ और दशक जीवित रहते तो वह और अधिक सफल होते। दिल्ली के समस्त मुस्लिम शासकों में शेरशाह ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसे प्रशासन के प्रत्येक स्तरों का अनुभाविक ज्ञान था। इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार छत्रपति शिवाजी की तुलना शेरशाह से करते हैं। अपने बाल्यकाल की घरेलू स्थिति में अपने प्रारम्भिक जीवन और प्रशिक्षक में अपने चरित्र के विकास में उस घटनाक्रम में भी जिसमें वे सिंहासनरूढ़ हुये थे शाह जी भोसले का परित्यक्त पुत्र हसन सूर के पुत्र का ठीक–ठीक समरूप

था।[17]

सम्राट अकबर का जन्म 15 अक्टूबर सन् 1542 ई0 को अमरकोट में हुमायूं की नवविवाहिता पत्नी हमीदा बानो बेगम के गर्भ से हुआ था। इस समय हुमायूं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। भारत छोड़ते समय हुमायूँ ने अकबर को अपने भाई अस्करी के संरक्षण में छोड़ दिया। तब से सन् 1515 ई0 में जब हुमायॅू ने पुनः भारत पर आक्रमण किया तो अकबर उसके साथ था और लाहौर विजय के साथ ही हुमायूँ के मृत्योपरान्त फरवरी सन् 1556 ई0 में बैरम खाँ के संरक्षण में कलानूर के निर्जन स्थान पर अकबर को मुगल सम्राट घोषित कर दिया गया। राज्यारोहण के समय अकबर मात्र लगभग तेरह वर्ष का ही था।[18]

नूरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर का जन्म 30 अगस्त सन् 1569 ई0 को शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद स्वरूप हुआ था। जहाँगीर की माँ आमेर के राजा भारतमल की पुत्री थी। जहाँगीर की शिक्षा–दीक्षा अब्दुर्रहीम खानखाना के संरक्षण में अुआ और उसने अतिशीघ्र तुर्की, फारसी, संस्कृत आदि विभिन्न भाषाओं पर अच्छा अधिकार स्थापित कर लिया। उसने 'तुज्क–ए–बाबरी' का अनुवाद फारसी में किया तथा इसी प्रकार उसने भी 'तुज्क–ए–जहाँगीरी' नामक ग्रंथ की रचना की। चित्रकला में उसे विशेरूा रुचि थी तथा वह स्वयं भी अनेक चित्रों का निर्माता था। चित्रकला की दृष्टि से जहाँगीर का काल स्वर्णयुग था। सन् 1581 ई0 में काबुल में सेना का नेतृत्व जहाँगीर ने किया। इसके पश्चात् भी उसने अनेक युद्धों

में भाग लिया। इस प्रकार व्यवहारिक रूप से भी वह सैन्य कला में निपुण हो चुका था। सन् 1599 ई0 में सलीम ने सम्राट अकबर के विरूद्ध असफल विद्रोह उस समय कर दिया जब वह दक्षिणी–अभियान हेतु गया था। सन् 1604 ई0 में जब अकबर ने उसे मेवाड़–विजय करने भेजा तो वह मेवाड़ की ओर न जाकर इलाहाबाद चला गया और विद्रोह कर दिया। अब अकबर ने स्वयं उसे दण्डित करने का निश्चय किया, परन्तु मार्ग में ही अपनी माँ की मृत्यु का समाचार मिलने से वापस लौट आया। अन्त में, सलीम भी आगरा आया और सम्राट से क्षमा माँग ली। सन् 1605 ई0 में अकबर के मृत्योपरान्त जहाँगीर निर्विरोध रूप से मुगल साम्राज्य का सम्राट बन गया क्योंकि इस समय तक अकबर के शेष पुत्र मुराद तथा दानियाल विभिन्न रोगों से ग्रस्त होकर काल–कवलित हो गये थे।[19]

शिहाबुद्दीन मोहम्मद शाहजहाँ (खुर्रम) का जन्म सन् 1592 ई0 में राजपूत राजकुमारी के गर्भ से हुआ था। जहाँगीर ने खुर्रम की शिक्षा–दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया था। अतः खुर्रम ने शीघ्र ही अरबी, फारसी, राजनीति, धर्म, भूगोल, इतिहास आदि विषयों का महान अध्ययन कर लिया था। खुर्रम को गहन सैन्य प्रशिक्षण भी प्रदान किया गया था जिसके कारण अल्प आयु में ही खुर्रम की गणना सर्वश्रेष्ठ मुगल सेनानायकों में की जाने लगी। खुसरों के विद्रोह के साथ ही खुर्रम के उत्थान का काल प्रारम्भ हो गया जो सन् 1622 तक निरन्तर चलता रहा। सन् 1607 ई0 में खुर्रम को 8000 जात/5000 सवार का मनसब प्रदान किया गया।

सन् 1608 ई0 में उसके मनसब से वृद्धि कर 10,000 जात/5000 सवार का मनसब बनाया गया। इसी वर्ष नूरजहाँ ने शाही महल में प्रवेश किया और नूरजहॉ, की भतीजी तथा आसफ खाँ की पुत्री अर्जुमन्द बानो से खुर्रम का विवाह हुआ जिससे खुर्रम के प्रभाव क्षेत्र में और वृद्धि हुई। सन् 1621 ई0 तक मेवाड़ और दक्षिण की अपार सफलता ने खुर्रम को सफलता कके सर्वोच्च शिखर पर बिठा दिया। परन्तु सन् 1622 ई0 में जब नूरजहाँ खुर्रम की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर उसका विरोध करने लगी तो उसने विद्रोह कर दिया। परन्तु सन् 1623 ई0 में महावत खाँ और परवेज की संयुक्त सेनाओं से खुर्रम परास्त हुआ और दक्षिण की ओर भागा तथा मलिक अम्बर से शरण माँगी परन्तु शाही सेनाओं के द्वारा निरन्तर पीछा करते रहने से उसे विवश होकर सम्राट से क्षमा माँगनी पड़ी।[20]

शाहजहाँ का तृतीय पुत्र मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब था जो एक धर्म–परायण मुसलमान था तथा इसे कट्टरपंथी मुस्लिम वर्ग का सहयोग भी प्राप्त था। इस वर्ग का सहयोग प्राप्त करना औरंगजेब की एक विवशता भी थी। क्योंकि दारा के साथ दरबार का उदारवादी गुट था तो आरंगजेब को भी अपनी स्थिति की सुदृढ़ता हेतु कट्टरपंथी गुट का सहयोग प्राप्त करना अत्यावश्यक था। अतः अपने राजनैतिक लाभ हेतु ही औरंगजेब ने कट्टर पन्थियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त युद्ध–कला और सैन्य प्रतिभा के दृष्टिकोण से औरंगजेब अपने समस्त भाईयों में सर्वाधिक योग्य और प्रतिभाशाली

था, इस तथ्य को सभी इतिहासकार एकमत से स्वीकार करते हैं, औरंगजेब ने गुजरात, दक्षिण और मध्य एशिया के अभियानों में अपनी उत्कृष्ट सैन्य क्षमता का प्रदर्शन किया था, साथ ही वह कुशल राजनीतिक और कूटनीतिज्ञ भी था। उत्तराधिकार के संघर्ष के समय वह दक्षिण में था।[21]

औरंगजेब का जन्म 24 अक्टूबर 1618 ई0 को हुआ था। चार वर्ष के पश्चात् जहाँगीर के दरबार में बन्धक के रूप में नूरजहाँ के पास रहा। शाहजहाँ राज्यारोहण के पश्चात् औरंगजेब का दैनिक भत्ता एक हजार रूपया निर्धारित किया गया।[22] औरंगजेब के प्रारम्भिक शिक्षण के सम्बन्ध में इतिहासकारों ने बहुत कम प्रकाश डाला है। समकालजीन इतिहासकार लाहौरी के अनुसार, मीर हसन निजामी नामक एक शिया को औरंगजेब का प्रारम्भिक शिक्षण नियुक्त किया गया था किन्तु उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। तत्पश्चात् औरंगजेब ने अनेक शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त की, उसे अरबी व फारसी भाषाओं का पूर्ण ज्ञान कराया गया। औरंगजेब के द्वारा लिखे गये हजारों की संख्या में प्राप्त पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि वह एक उच्च कोटि का विद्वान था। उसकी रुचि फारसी ग्रंथों के पठन–पाठन में थी। हदीस को उसने कण्ठस्थ कर लिया था, वह धर्म में भी अधिक रुचि रखता था। कुरान एवं अन्य ग्रंथों का उसने गहन अध्ययन किया था। जहाँ दाराशिकोह विभिन्न धर्मो का गहन अध्यापन करना चाहता था वहीं औरंगजेब मात्र इस्लाम धर्म में ही गहन रुचि रखता था।[23]

औरंगजेब यद्यपि एक कठोर शासक था तथापि अपने सामन्तों के प्रति भी अत्यन्त सम्मानित व्यवहार करता था। वास्तव में अगर हमें उसके चरित्र को समझना है तो हमें साम्प्रदायिकता की दूषित मानसिकता को निकाल देना होगा और तब हम औरंगजेब के चरित्र का अध्ययन करें तो एक दूसरा पक्ष सामने आता है जो उदारता, धर्मनिरपेक्ष, विलक्षण योद्धा कुशल कूटनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी सम्राट का प्रतीत होता है। औरंगजेब के मृत्योपरान्त उसके प्रयत्न निष्फल होने लगे तथापि उसके कार्यों पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे।

सदर्भ :–

1. इलियट एंड डाउनसन – भारत का इतिहास – पृ0 80–87
2. डा0 के0एस0 लाल – ग्रोथ ऑफ मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिविल इण्डिया, पृ0 52–53
3. प्रो0 ए0बी0 पाण्डेय – मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 94–95
4. डॉ0 आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव – मेडिविल इण्डियन कल्चर, पृ0 122–123
5. डॉ0 एस0बी0पी0 निगम – नोबेलिटी अण्डर द सुल्तान्स ऑफ देलही, पृ0 144–145
6. एस0एच0 हादीवाला – स्टडीज इन इण्डो–मुस्लिम हिस्ट्री, पृ0 58–59
7. ईश्वरी प्रसाद – हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इण्डिया, पृ0 70–72
8. ए0 रशीद – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिविल इण्डिया, पृ0 112–113
9. हबीब एण्ड निजामी – कम्प्रेहेन्सिव ऑफ इण्डिया, पृ0 190–192
10. वही, पृ0 198–199
11. मो0 यासीन – सोसल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, पृ0 90–91
12. के0ए0 निजामी – सम आस्पेक्ट ऑफ रिलीजन एण्ड पालिटिक्स, पृ0 142–143
13. डॉ0 आर0सी0 मजूमदार – एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 71–72

14. बाबर – बाबरनामा, अनुवाद – डॉ0 केशव कुमार, पृ0 84–85

15. आर0सी0 मजूमदार – एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 95–98

16. यू0 एण्ड डे0 – सम आस्पेक्ट ऑफ मेडिविल इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 109–110

17. ईश्वरी प्रसाद – हिस्ट्री ऑफ मेडिविल इण्डिया, पृ0 149–150

18. डॉ0 सुरेश कुमार – द ग्रेट अकबर, पृ0 123–124

19. मो0 इश्तियाक – जहांगीर, पृ0 88–89

20. वही, पृ0 102–103

21. जे0एन0 सरकार – हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब, पृ0 34–35

22. सैय्यद इक़बाल अहमद जौनपुरी – औरंगज़ेब तथा शिवाजी, पृ0 66–67

23. वही, पृ0 111–112

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक भ्रष्टाचार

कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206–1210 ई0 तक, इल्तुतमिश के वंश ने 1210–1266 ई0 तक और बल्बन के वंशों ने 1266 ई0 तक राज्य किया। फ़ख्रे मुदब्बिर के अनुसार जब मुइज़्ज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी 1205–6 ई0 में खोखरी को हराकर ग़जनी वापस लौट रहा था तो उसने औपचारिक रूप से ऐबक को अपने भारतीय ठिकानों का प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसे 'मलिक' का पद प्रदान किया गया था और उसे 'वली–अहद' या उत्तराधिकारी घोषित किया गया। अचानक मृत्यु हो जाने के कारण ऐबक अपना उत्तराधिकारी नहीं चुन सका। सम्भवतः ऐबक का कोई बेटा नहीं था। मिनहाज ने उसकी तीन बेटियों का जिक्र किया है, उसमें एक का विवाह इल्तुतमिश के साथ हुआ था। आर0पी0 त्रिपाठी के अनुसार– भारत वर्ष में मुस्लिम प्रभुसत्ता का श्रीगणेश वास्तविक रूप से ऐबक के द्वारा ही होता है।[1]

इल्तुतमिश ने रजिया को अपना उत्तराधिकारी चुना था, किन्तु उसकी मृत्यु के दूसरे दिन रूक्नुकद्दीन फ़िरोज शाह को गद्दी पर बैठाया गया। रूक्नुकद्दीन विलासी प्रवृत्ति का व्यक्ति था जो दिल्ली का शासन सम्भालने में पूर्णतः असमर्थ था। उसकी माता शाह तुर्कान, जो एक तुर्क दासी थी शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। उसने आतंक का शासन शुरू किया और इल्तुतमिश के होनहार पुत्र कुतुबुद्दीन को अन्धा करके मरवा दिया। रजिया ने उचित अवसर देखकर सत्ता पर अधिकार कर लिया। रजिया ने दिल्ली के बाहर यमुना के किनारे अपना

शिविर लगाया। शीघ्र ही उसने इजुद्दीन सलारी और इजुद्दीन कबीर खां को गुप्त रूप से अपनी ओर मिला लिया। मलिक सैफुद्दीन कूची और उसके भाई फखरूद्दीन को पकड़कर मरवा दिया। राजधानी के कुछ अमीर गुप्त रूप से अल्तुनिया का समर्थन कर रहे थे। तुर्क अमीरों ने याकूत की हत्या कर दी और रजिया को बन्दी बना लिया। रजिया के स्वतंत्र रूप से शासन करने की नीति से अमीर अधिकारी भय करने लगे थे कि शासन की वास्तविक शक्तियाँ उन्हीं में से किसी एक की हाथ में रहनी चाहिए। सुल्तान का शासन पर कोई प्रभावशाली नियंत्रण न रखा जाय। इसलिए रजिया के बाद के शासक इस योग्य नहीं थे कि वे सुल्तान के पद को अधिक प्रतिष्ठित बना सकें। अपनी शासन सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए तुर्क अधिकारियों ने एक नवीन पद नायब–ए–मुमलकत की रचना की जो सम्पूर्ण अधिकारों का स्वामी होगा। मुइज्जुद्दीन बहरामशाह का चुनाव इसी शर्त पर किया गया कि मलिक इख्तियारूद्दीन ऐतगीन को अपना नायब बनाये। ऐतगीन रजिया के विरूद्ध षड़यंत्रकारियों का नेता था। मिनहाज के अनुसार यद्यपि बहरामशाह में अनेक प्रशंसनीय गुण थे, तथापि वह क्रूर और रक्तपात करने वाला शासक था। दो मास के शासनकाल में उसने यह स्पष्ट कर दिया था कि वही वास्तविक शासक था। यद्यपि वह योग्य नहीं था, तथापि वह हत्या करने में संकोच नहीं करता था। वह अपनी प्रतिष्ठा और विशेषाधिकारों के संबंध में तुर्की सरदारों से समझौता करने को तैयार नहीं था। एतगीन ने नायब बनने के बाद

शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी। अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए उसने इल्तुतमिश की तलाकशुदा पुत्री (बहरामशाह की बहन) से विवाह कर लिया। उसने अपने द्वार पर नौबत (नगाड़ा) और हाथी रखना शुरू कर दिया जिसका अधिकार केवल सुल्तान को होता था। ऐतगीन की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं के कारण दो माह में ही सुल्तान ने दरबार में उसकी हत्या करवा दी। बद्रुद्दीन सुन्कर रूमी 'अमीरे हाजिब' के पद पर था। ऐतगीन की मृत्यु के बाद उसने नायब के सभी अधिकारों को अपने हाथ में ले लिया। उसने कुछ अमीरों के साथ मिलकर बहरामशाह की हत्या का षड्यंत्र बनाया। मलिक कुतुबुद्दीन हसन को नायब बनाया गया। ख्वाजा मुजहबुद्दीन की भी हत्या कर दी गई क्योंकि वह 'ताजिक' (ग़ैर तुर्की) था। उसकी हत्या के बाद नजमुद्दीन अबू बक्र वज़ीर बनाया गया। बहरामशाह के विरूद्ध विद्रोह में गयासुद्दीन बल्बन ने समस्त तुर्क व ताजिक विद्रोहियों में सबसे अधिक साहस दिखाया था, अतः उसे हाँसी की 'अक्ता' दी गई।[2]

बल्बन अपने साथ के तुर्क अधिकारियों की ईर्ष्या के प्रति सावधान था। अतः जब उसने सुल्तान के पद पर नासिरूद्दीन को बैठाने के लिए षड्यंत्र किया तो उसने बिना कोई शर्त रखे सभी महत्वूपर्ण तुर्क अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया जिस शांतिपूर्ण ढंग से सुल्तान मसूदशाह को सिंहासन से हटाया गया इससे स्पष्ट है कि सुल्तान अपनी सत्ता को पूरी तरह खो चुका था। चार वर्ष

एक मास के शासनकाल के बाद से 10 जून, 1246 को कारागार में डाल दिया गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। मिनहाज के वर्णन के आधार पर अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने रिहान की आलोचना की है। उसे एक 'धर्मच्युत हिंदू', 'शक्ति का अपहरणकर्त्ता', 'षड्यंत्रकारी' आदि कहा गया है। केवल मुसलमान बन जाने से वह तुर्कों के समान नहीं समझा जा सकता था। तुर्की अमीर भारतीय मुसलमानों के प्रति उतने ही उदासीन थे जितने वे हिंदुओं के प्रति थे। बद्रुद्दीन सुन्कर के षड्यंत्र में उलेमा व क़ाजी ने सक्रिय रुचि ली और उसे सहयोग दिया। सुल्तान बहरामशाह ने भी उलेमा का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा क़ाजी मिनहाज–उस–सिराज को जनता को संबोधित करने के लिए भेजा। मिनहाज ने उलेमा वर्ग के कार्यों के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी है। इसका कारण यह है कि वह स्वयं उलेमा वर्ग का सदस्य था। किंतु अन्य समकालीन रचनाओं से ज्ञात होता है कि उलेमा ने अपनी धार्मिक और नैतिक इज़्ज़त खो दी थी और वे राजनीति में हस्तक्षेप करने लगे थे। इल्तुतमिश के अनुसार मेरे पुत्र भोगविलास में लीन हैं और कोई भी शासन करने के योग्य नहीं है। इस राज्य का शासन नहीं कर सकते। मेरी मृत्यु के उपरान्त आपको ज्ञात हो जाएगा कि रजिया के समान शासन करने वाला कोई नहीं है। उपरोक्त कथन से सिद्ध होता है कि इल्तुतमिश के पुत्र कितने भोग विलास में लिप्त रहने वाले होंगे। बल्बन अपने मलिकों और अमीरों के कानों में निरन्तर चिल्ला–चिल्ला कर यह कहता रहा कि राजस्व एक

दैवी संस्था है। इस कथन के पीछे उसके माथे पर राज्य हत्या का जो कलंक लगा था वह उसे धो डालने के लिए अमीरों के मन में यह विचार भली–भाँति बैठा देना चाहता था कि वह दैवी इच्छा से ही शासन पर आसीन हुआ है न कि किसी हत्यारे के विष भरे प्याले या कटार के बल पर। हालांकि सत्ता हथियाने का यह तरीका बल्बन का अत्यन्त ही घृणित रहा जिसमें उसने अपने दामाद की हत्या की थी। उसने दैवी दायित्व की आड़ लेकर अपनी सत्ता को वैधानिक रूप देने का प्रयास किया। उसने इस पर भी बल दिया कि राजा को शक्ति ईश्वर से प्राप्त होता है इसलिए उसके कार्यों की सार्वजनिक जाँच नहीं की जा सकती है। निजामी के अनुसार यह एक जटिल धार्मिक युक्ति थी जिससे वह अपने निरंकुश सत्ता को पवित्र बनाना चाहता था।[3]

भ्रष्टाचार के एक अन्य उदाहरण में फख्र बावनी नामक दिल्ली के एक धनी व्यक्ति ने राजमहल के अधिकारियों को रिश्वत देकर सुल्तान से भेंट करने की कोशिश की थी। परन्तु बल्बन ने अपने दरबारियों के इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया। एक अन्य उदाहरण में वह अपने आप को फिरदौसी के शाहनामा में वर्णित अफरासियाब के वंश से संबंधित घोषित किया। ऐसा उसने अपने आप को उच्च कुल का वंशज बताने के लिए किया। बल्बन ने ऐसे लगभग 30 अधिकारियों को पदच्युत कर दिया जो उच्च वंश के नहीं थे। उसने अपने दरबारियों को इसलिए बहुत डांटा कि उन्होनें कमाल महियार नाम के एक नये मुसलमान को

अमरोहा के मुतसर्रिफ के पद पर चुना था। वह सदैव कुलीन और अकुलीन व्यक्तियों के बीच अन्तर रखता था। बल्बन के अनुसार जब मैं किसी तुच्छ परिवार का व्यक्ति देखता हूँ तो मेरे शरीर के प्रत्येक नाड़ी क्रोध से उत्तेजित हो जाती है। सामाजिक भ्रष्टाचार का ऐसा स्वरूप बल्बन ने कई स्थानों पर प्रदर्शित किया। बल्बन ने अमीरों की शक्ति को नष्ट करने के लिए कृतसंकल्प था और साधारण सी अपराध के कारण उनको मृत्यु दण्ड देने में नहीं हिचकता था। अपने विरोधियों और विद्रोहियों के संबंध में न तो न्याय व ईमानदारी का ध्यान और न हीं शरीयत का ध्यान रखता था। वह उन्हें क्रूरता पूर्वक दण्ड देता था। बर्नी के अनुसार विद्रोह के अपराध में वह किसी सम्पूर्ण नगर अथवा उसकी सेना को पूर्णतः नष्ट–भ्रष्ट कर देता था। बल्बन ने नैतिक रूप से अनेक भ्रष्टाचार किए हैं। उसने अपने चचेरे भाई शेर खां को विष देकर मरवा दिया, क्योंकि सुल्तान उसकी योग्यता और महत्वाकांखा के कारण उससे जलन रखता था। इसके अतिरिक्त इल्तुतमिश के परिवार की सभी सदस्यों की निर्दयता पूर्वक हत्या करवा दी। कैकुबाद एक सुन्दर शिष्ट और उदार योग्य था। उसकी शिक्षा–दीक्षा कठोर नियंत्रण में हुई थी। सुन्दर स्त्रियों और शराब के प्यालों तथा घूंघरों की खनक से उसे बहुत दूर रखा गया था। सत्ता पाने पर उसके अन्दर वर्षों की दबी हुई अकांक्षा भड़क उठा और उसने भोग–विलास, शराब, नृत्य में अपना जीवन गुजार दिया। एक अन्य उदाहरण में निजामुद्दीन ने कैकूवाद को भड़काकर मंडोली में

कैखुसरो की हत्या करवा दी। बल्बन के घोषित उत्तराधिकारी की हत्या के पश्चात ऐसा हत्याक्रम आरम्भ हुआ जिसमें कोई भी शासक वर्ग या अमीर वर्ग अपने को सुरक्षित नहीं समझ रहा था। निर्दयता पूर्वक अमीरों एवं मलिकों की हत्या सामान्य बात हो गयी थी। कुछ समय पश्चात तुर्क अधिकारियों को उचित अवसर प्राप्त हुआ और उन्होंनें विष देकर निजामुद्दीन की हत्या करवा दी। मलिक कच्छन और मलिक सुर्खा ने कुछ अन्य तुर्क अमीरों के साथ मिलकर निर्णय लिया कि जो सच्चे तुर्क नहीं है उनको पद से हटा दिया जाय। भेदभाव पूर्ण भ्रष्टचार के इस उदाहरण में जलाउद्दीन खिलजी का नाम सबसे ऊपर था। कच्छन जलालुद्दीन के भवन पर पहुँचा और उसकी हत्या कर दी गई। कच्छन की हत्या के बाद दोनों दलों में संघर्ष शुरू हो गया। शिशु सुल्तान कैमुर्स को बलपूर्वक उठाकर जलालुद्दीन के शिविर में लाया गया। ऐतमार्क सुर्खा ने उसका पीछा किया परन्तु उसे मार डाला गया। जलालुद्दीन एक निष्ठावान, निष्कपट, दयालू एवं उदार व्यक्ति था। शाही सत्ता पर दृढ़ता के साथ प्रयोग करने में वह असमर्थ रहा। जलालुद्दीन ने कहा कि मैं एक वृद्ध मुसलमान हूँ और मुसलमानों का रक्त बहाना मेरी आदत नहीं है। ऐसी ही भावना को भांप कर जलालुद्दीन के दामाद अलाउद्दीन खिलजी जो कि उसका भतीजा भी था, बलपूर्वक सिंहासन हथियाने का प्रयास किया और कपट द्वारा जलालुद्दीन हत्या करवा दी। शक्ति, सत्ता व राजस्व के सम्बन्ध[1] में अलाउद्दीन सफल हुआ लेकिन मानवीय भावनाओं के उपेक्षा करके ही उसने गद्दी

प्राप्त की थी।[4]

दक्षिण अभियानों में अलाउद्दीन के आक्रमणों का प्रमुख कारण कुछ इस प्रकार रहा कि दक्षिण के राजा क्रूर, विलासी व अत्याचारी नहीं रहे जिसका उसने भरपूर लाभ उठाया और दक्षिणी राज्यों को तहस–नहस करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अलाउद्दीन ने जलाली परिवार के उन सभी सदस्यों को समाप्त कर दिया जो उनके प्रतिद्वन्दी बन सकते थे व धर्म का निर्माता भी बनना चाहता था। जिससे कोई उसका प्रतिद्वन्दी न रह सके और न ही उसे कोई चुनौती दे सके। इस प्रकार वह योजना बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से इस्लाम की अवहेलना कर रहा था जो एक घोर नैतिक अपराध की श्रेणी में आता है।[5]

नुसरत खॉ एक महान सैनिक नेता था, परन्तु भ्रष्टाचार में लिप्त होने के कारण वह बहुत बदनाम था जिसके कारण उसे अलाउद्दीन ने पद मुक्त किया। अलाउद्दीन के शासनकाल में ही मदिरापान करने वाले एक काजी को दण्ड देने का उदाहरण प्राप्त होता है। मदिरापान एक धर्माधिकारी द्वारा करना नैतिक भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। भ्रष्टाचार के अन्य उदाहरणों में अलाउद्दीन ने घोड़ों को दागने की प्रथा आरम्भ की ताकि एक घोड़े को दोबारा न प्रस्तुत किया जा सके और न ही उसके स्थान पर निम्न श्रेणी का घोड़ा रखा जाय। प्रशासनिक स्तर पर भ्रष्टाचार इस कदर बढ़ गया था कि उसे इस कार्य के लिए कई अधिकारी नियुक्त करने पड़े तथा दमन करने के लिए कड़ाई का पालन करना

पड़ा था। अलाउद्दीन के शासन काल में ही उपज पर 50 प्रतिशत कर लगाकर तथा विभिन्न प्रकार के अन्य कर लगाकर जनता को प्रताड़ित करने का भरपूर प्रयास किया गया। नाजिर याकूब की कठोर देखभाज के बावजूद व्यापारी ग्राहकों को ठगते थे, खोटे बाट रखते थे, अच्छी किस्म की वस्तुओं को चुरा कर अलग रखते थे और उसका अलग से दाम वसूलते थे। खालसा भूमि के विस्तार से नीचे दर्जे के राजस्व कर्मचारियों की संख्या बढ़ गई थी जिनमें से अधिकांश भ्रष्ट और लुटेरे हो गये थे। अलाउद्दीन ने इन दोषों को सर्माप्त करने के लिए दीवान–ए–मुस्तखराज नामक एक विभाग निर्मित किया। मुस्तखराज को राजस्व एकत्र करने वाले अधिकारियों के नाम बक़ाया राशि की जाँच करने और वसूल करने का कार्य सौंपा गया। आमिल, कारकून, पटवारियों और राजस्व से संबंधित अन्य निम्न अधिकारियों में भ्रष्टचार समाप्त करने के कठोर उपाय किए गए। उन्हें ईमानदार बनाने और रिश्वखोरी से रोकने के लिए उनके वेतन बढ़ा दिए गए। इस पर भी जो अधिकारी भ्रष्टाचार करते रहे उन्हें निर्दयतापूर्वक दण्ड दिए गए। अलाउद्दीन ने न तो इक्ता– प्रथा समाप्त की और न खूती प्रथा। उसने केवल स्वामियों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिए, उसकी उद्दंडता कुचल डाली। उन्हें मितव्ययिता का जीवन व्यतीत करने को बाध्य किया। परन्तु उसकी आर्थिक–प्रणाली ने कृषक वर्ग को भी अपनी लपेट में ले लिया कृषकों को अपनी आय का पचास प्रतिशत भूमिकर, चराई कर एवं आवास कर के रूप में चुकाना होता था। बाजार

नियंत्रण के अंतर्गत निर्मित अन्नागारों की पूर्ति के लिए उसे अपने बचत का सारा अनाज सुल्तान द्वारा नियंत्रित दरों से बेचने के लिए बाध्य किया जाता था।[6]

भ्रष्टाचार के अन्य उदाहरण में खुसरों खॉ ने शाही महल में षड्यंत्र रचकर मुबारकशाह की हत्या कर दी तथा सल्तनत को बलपूर्वक हथिया लिया। साथ ही खुसरों खॉ ने राजनैतिक स्वार्थ के लिए सभी बड़े–बड़े अमीरों और अफ़सरों को अपने पक्ष में करने के लिए भ्रष्ट तरीके अपनाये और पैसा पानी की तरह बहाया। एक अन्य उदाहरण में तेलंगाना में राय प्रताप रूद्र देव ने भेंट देने से इंकार कर दिया और उसने अपने आप को दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र घोषित कर लिया। ऐसी स्थिति में सल्तनत की सेनाएं जौना खॉ के नेतृत्व में वारंगल आयीं और दुर्ग को करीब छहः महीने का घेरे रखा। तिलंगों की रसद पंक्ति काट दी गयी किन्तु इसी समय ग्यासुद्दीन तुगलक की मृत्यु की अफ़वाह फैला दी गई। अफसरों ने सांठ गांठ शुरू कर दी। मोहम्मद तुगलक के काल में भ्रष्टाचार का एक बहुत बड़ा उदाहरण मिलता है। जब उसने सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन शुरू किया तो लोगों ने घर के बर्तनों को तोड़कर ताँबे व कांसे का सिक्के बनवाकर सरकार को धोखा देने की कोशिश की। इससे सुल्तान का खजाना खाली हो गया क्योंकि बदले में सोने व चाँदी के सिक्के दिए गये। लोगों ने ताँबे व कांसे के सिक्के बनवाकर लाभ कमाना शुरू कर दिया। मध्यवर्ती जमींदारों ने चाँदी के सिक्के छिपा लिए तथा नए सिक्कों से हथियार भी खरीदने लगे किन्तु जब व्यापारियों ने ताँबे के सिक्के

लेने से इंकार कर दिया तो सारी अर्थव्यवस्था ठप नजर आने लगी। साथ ही अफसरों ने सुल्तान को बदनाम करने का प्रयास किया।[7]

धार्मिक भ्रष्टाचार के एक अन्य उदाहरण में सुल्तान को पता चला कि किश्लू खॉ को उसके विरूद्ध विद्रोह करवाने में सैय्यदों का हाथ था। सुल्तान ने कई उलेमाओं की निर्दयतापूर्वक हत्या करवा दी और दूसरों को बड़ी–बड़ी सजायें दी। सुल्तान किसी भी विद्रोही को क्षमा करने के लिए तैयार न था। इससे उलेमा वर्ग में रोष उत्पन्न हुआ और इसके अतिरिक्त सुल्तान ने हिन्दुस्तानी सूफियों की जगह बाहर से आने वाले सूफियों को अधिक अनुदान दिए। यह व्यवहार भारतीय सैय्यदों और सूफीयों के लिए अनादर प्रतीत हुआ। जिससे सुल्तान के विरूद्ध लोक मत तैयार होने लगा।[8]

इतिहास में शायद ही ऐसा कभी हुआ हो जब लगान वसूली के समय अत्याचार किया गया। कईयों के उपज को आग लगा दी गयी। दोआब के विद्रोहियों को शक्ति से दबाया गया, क्योंकि जो सुल्तान उलेमा को न क्षमा कर सका वह जमींदारों का विद्रोह कैसे बर्दाश्त कर सकता था। इब्नेबतूता लिखता है कि मोहम्मद तुगलक उलेमा वर्ग के विरूद्ध इस कदर व्यवहार करना शुरू कर दिया कि उन्हें सैनिक, अर्द्धसैनिक तथा वेतनभोगी बनाने के लिए विवश कर दिया। उलेमा वर्ग के लिए यह असहनीय हो गया। उन्होनें सुल्तान को काफिर की संज्ञा प्रदान की। सुल्तान पर अपने पिता गयासुद्दीन तुगलक की हत्या का भी

आरोप रहा है। विद्रोहियों का दमन करने के लिए नए अफसरों की भर्ती की जिन्हें बर्नी ने छिछोड़ा, दीन अवस्था से बने नए रईस तथा निम्न वर्ग कहकर उनकी निन्दा करता था तथा उनपर व्यंग्य कसता था। किसी को शराबी, किसी को गाने–बचाने वाले का लड़का, नाई, रसोईया, माली, जुलाहा तथा शेष सब को दुर्जन समझता था। बर्नी का यह आचरण नैतिक भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है।[9]

भ्रष्टाचार के ही एक अन्य उदाहरण में ईंशा–ए–माहरू के पत्रों से पता चलता है कि वंशानुगत पदों पर विराजमान अमीर तथा अफसर किसी को हानि नहीं पहुंचाते थे, वे केवल सरकार को लूटते थे। चारों तरफ भ्रष्टाचार व्याप्त था। सुल्तान ने उस पर काबू पाने का प्रयास नहीं किया, बल्कि आँखे बन्द कर ली। उसे लगा कि वह किसी को नाजायज सजा नहीं दे रहा है, न ही मुसलमान का खून बहा रहा है। धार्मिक वर्ग से प्रशंसा प्राप्त करने के लिए उसने पुरी के जगन्नाथ मंदिर को हानि पहुँचाई।[10]

सरकारी पदों को वंशानुगत करना, अधिकतर सैनिकों को वेतन के बदले जागीर देना कुछ ऐसे कार्य थे जिससे भ्रष्टाचार को अत्यधिक बढ़ावा मिला। लगान वसूल कर रहे कर्मचारियों के पास जब सैनिक जाता था तो वह उन्हें केवल 50 प्रतिशत ही लगान देते थे। शेष 50 प्रतिशत लगान सरकारी खर्चे के लिए रखते थे। कितनी ही बार सैनिकों के और कहीं जाने पर ऐसे इतलातनामे दलालों को 30 प्रतिशत पर बेंच दिये जाते थे जो 20 प्रतिशत अपने पास रख लेते

थे, इस भ्रष्ट प्रक्रिया का दुष्परिणाम कुछ इस प्रकार हुआ कि सैनिकों के लड़के सैनिक न रहकर लगान वसूल करने वाले पेंशनर बन गये। हालात यहां तक हुए कि फिरोजशाह की मृत्यु के पश्चात लगान प्राप्त करना कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त सैनिक अफसरों ने घटिया घोड़ों को रिश्वत देकर पास करवा लिया।[11]

फिरोजशाह के शासनकाल में व्यापक भ्रष्टाचार था। अफीफ के अनुसार सुल्तान का वजीर खाँन–ए–जहाँ मकबूब स्वयं ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध था, परन्तु ऐसा वजीर भी भ्रष्टाचार को रोकने में असमर्थ था। सभी अधिकारी रिश्वतखोर थे। इमाद–उल–मुल्क बशीर मुल्तानी ने भ्रष्ट तरीकों से असीम दौलत जमा कर ली थी। यही दौलत फिरोजशाह की मृत्यु के बाद उसके दासों के बीच झगड़ों और षड्यंत्रों का कारण बने। सरकारी पदों का दुरूपयोग इतना बढ़ गया कि जिन करों को गैर इस्लामी कहकर समाप्त किया गया था, अमीर उन्हीं करों को दोबारा लगा दिया करते थे। फिर भी केन्द्र सरकार कोई कार्यवाही नहीं कर पाती थी। अफीफ एक ऐसा घुड़सवार का जिक्र करता है जिसे सुल्तान ने अपने खजाने से एक टंका दिया ताकि वह रिश्वत देकर अर्ज में अपने घोड़े पास करवा सके। सामान्यतः भ्रष्टाचार का स्वरूप इस तरह बन गया था कि छोटे अफसर रिश्वत लेकर बड़े अफसरों को कुछ हिस्सा भेज दिया करते थे। एक अनुमान के अनुसार फिरोज सरकार की वार्षिक आय 6 करोड़ 75 लाख टंका थी। जबकि अनेक सेना मंत्री बशीर जो कि प्रारम्भ में सुल्तान का दास था उसके पास 13

करोड़ टंका धन दौलत थी। उसे रापरी का अक्ता भी मिला था। किन्तु वजीर को उसके प्रतिनिधि से अतिरिक्त लगान मांगने का साहस नहीं था।[12]

फिरोजशाह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर कई दासों ने शाही खानदान के राजकुमारों की हत्या भी कर दी। उनके सिर दरबार के दरवाजों पर लटका दिये। ऐसी स्थिति के कारण सुल्तान का परोपकारी कदम सल्तनत के लिए अभिशाप बना। एक अन्य उदाहरण में अलाउद्दीन का समकालीन शासक कुलशेखर एक योग्य और प्रभावशाली व्यक्ति था। उसके दो पुत्र थे– सुन्दर पाण्ड्या जो कि वैध पुत्र था दूसरा वीर पाण्ड्या जो कि अवैध पुत्र था। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार वीर पाण्ड्या को अपना उत्तराधिकारी चुना, फिर भी, सुन्दर पाण्ड्या ने पिता की हत्या कर दी और गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। दक्षिण में आक्रमण अभियान, लूट तथा मंदिरों को नष्ट करना धन प्राप्ति का एक साधन मात्र रहा है। मुबारकशाह खिलजी के सैनिकों ने हरपाल देव के मंत्री राघव को पकड़ लिया और उसका सिर काटकर देवगिरी के प्रवेशद्वार पर लटका दिया गया। देवगिरी के मंदिर और महल निमर्मता पूर्वक लूटे गये। मुबारक खिलजी के व्यक्तित्व का अन्त करने के पश्चात् नसिरुद्दीन खुसरो शाह बादशाह बना। उसने मुसलमानों के पवित्र स्थानों मस्जिदों आदि को नष्ट किया जिससे मुसलमान नेता और सैनिक उसके शत्रु हो गये। सर्वोच्च सैनिक तुगलक ने खुसरो का अन्त करके तुगलक वंश की स्थापना की।[13]

एक अन्य उदाहरण में अफ्रीकी यात्री इब्ने–बतूता लिखता है कि उबैद को उलुग खाँन ने स्वयं सुल्तान की मौत का समाचार फैलाने का आदेश दिया। क्योंकि उसे आशा थी कि यह खबर पाते ही सेना उसे बादशाह मान लेगी। किन्तु इसका असर उल्टा हुआ। मृत्यु की खबर पाकर सैनिकों ने विद्रोह किया और उलुग खाँन को मार डालना चाहा, परन्तु वह अपनी जान बचाकर दिल्ली पहुँचा और अपने पिता को किसी प्रकार समझाने बुझाने में सफल हो गया। जिससे उसके दोषों पर पर्दा पड़ गया। सुल्तान ने विद्रोहियों को पकड़कर उन्हें अनेकों यातनाएं दी। कुछ के सिर काट डाले गये बाकी को हाथी के पैरों–तले कुचला गया। उबैद खाँन तथा शेरजादा को जीवित ही जमीन में दफ़ना दिया गया। स्वामिभक्ति का यह पुरस्कार किस प्रकार सुल्तान के भ्रष्ट आचरण का प्रमाण प्रस्तुत करती है। वारंगल पर दूसरे आक्रमण के दौरान ने मुस्लिम सेना ने बड़ी निर्दयता से जनता को लूटा। बड़े–बड़े मंदिर व भवन को नष्ट कर दिया गया। इस अपमान से बचने के लिए राय ने सम्भवतः आत्महत्या कर ली थी। मालवा में सत्ताधिकारियों ने लूट–मार शुरू कर दी और जनता को कर न देने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही सत्ताधिकारियों ने देवगिरी में भी विद्रोह के झण्डे खड़े किए। वहाँ का हाकिम कुतलुग खाँन एक उदार व्यक्ति था। उसकी उदारता का लाभ उठाकर कर्मचारियों और सत्ताधिकारियों ने राजकीय खजाने में कर जमा करना बन्द कर दिया। परिणामस्वरूप शासन में भ्रष्टाचार फैला और राजकोष

रिक्त हो गया। अव्यवस्था और असंतोष बढ़ता गया। शासन ने भ्रष्टाचार के साथ राजस्व में गहरी कमी हो गयी जिससे प्रशासन शिथिल और अव्यवस्थित हो गया। धौलपुर के रियासत जो ग्वालियर के अधीन थी, सिकन्दर के सैनिकों ने किले पर कब्जा कर लिया और जी–भर लूटमार की। मंदिर गिरा दिए और उनके जगह कहीं–कहीं मस्जिद बना दी गयी। एक अन्य उदाहरण में सिकन्दर को पता चला कि अवन्तगढ़ के राजा ने मुजाहिद खान को घूस देने की कोशिश की ताकि वह किला राजा को लौटा देने के लिए सुल्तान से बात करे।[14]

भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में एक धर्म द्वारा दूसरे धर्म पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का कोई महत्व नहीं रहा। सल्तनतकालीन इतिहास के धरातल के नीचे समस्त लोगों के मध्य आपसी मैत्रित्व की एक अनन्त धारा धीरे–धीरे पर निर्वाध गति से बढ़ रही थी। धार्मिक विद्वेष से मुक्त यह धारा हिन्द इस्लामी सम्मेलन की धारा थी।

मध्यकालीन इतिहास में सल्तनत काल 1206 से 1526 तक माना जाता है। हालांकि भारत में मुस्लिम सत्ता की शुरूआत तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के साथ ही हो जाती है। लेकिन भली भांति शासन 1206 ई0 से ही शुरू होता है। सल्तनत कालीन शासन में प्रारम्भ मैं सैद्धान्तिक रूप में दिल्ली सल्तनत पूर्वी खिलाफत का एक भाग थी किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से वह एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में थी और शरीयत की सर्वश्रेष्ठता बनाये रखने का प्रयास होता है।

उक्त परिस्थितियों में दिल्ली का सुल्तान सैद्धान्तिक रूप से एक ऐसा अमर्यादित निरंकुश शासन था जिस पर कोई कानूनी बंधन नहीं थे मंत्रियों का कोई अंकश नही था और उसकी स्वयं की इच्छा ही सब कुछ थी।

सर्वसाधारण के कोई अधिकार नहीं थे बल्कि वे उसके एहसानमन्द थे वे केवल उसके आदेशों का पालन करने के लिये बनाये गये थे। इसलिये सुल्तान की आज्ञा उसका निर्णय एवं उनकी इच्छा सर्वोपरि थी। उक्त परिस्थिति में सुल्तान पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाने का साहस ही किसी में नहीं था, जो उसने कहा– वही सत्य है चाहे वह गलत ही क्यों न हो। इसका एक दिलचस्प उदाहरण मध्यकाल में मिलता है, जब बंगाल के एक सुल्तान ने एक यात्री व्यापारी को किसी बात पर प्रसन्न होकर इस्फहान का स्वामित्व प्रदान कर दिया। लेकिन उसके किसी भी सलाहकारों में इतना साहस नहीं था कि वे अपने सुल्तान को यह स्मरण कराते कि इस्फहान उसके राज्य में नहीं है। तात्पर्य यह है कि सल्तनतकाल में सुल्तान की सर्वोच्चता सर्वोपरि थी। अतः भ्रष्टाचार का प्रश्न ही नहीं उठता लेकिन जहां एक ओर दिल्ली के सुल्तानों ने धर्म और आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों के अनुरूप सुल्तान के पद को गरिमापूर्ण बनाया वहीं बहरमशाह मसूदशाह जैसे अनेक सुल्तानों ने उनका उल्लंघन किया और दुराचार की सीमायें लांघ गये।

जब मुसलमानों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करा लिया तो देश के सम्पन्न मैदानों और साधनों ने अतिभोगों के इतने अधिक अवसर उन्हें प्रदान कर दिये जितने गजनी और गोरी सुल्तानों के पास भी नहीं थे। उनकी सल्तनत शक्ति पर आधारित थी। उसके चलते रहने के लिये अत्याचार अनिवार्य था राजकोष सुल्तान की व्यक्तिगत सम्पत्ति थी। असीमित अव्यय सामान्य बात थी। बिना किसी भेद भाव के वे रक्त बहाने के आदी थे। यहां तक कि रक्त सम्बन्ध को भी राजतंत्र के सिद्धान्त में कोई स्थान नही था। धर्म और मानवता की भावना के विरुद्ध होने पर भी बिना जनमत के भय के लज्जा हीनता से रिश्तेदारों की हत्या कर दी जाती थी। शासन के चुनाव का सिद्धान्त उत्तराधिकार में प्राप्त जायदाद के हिस्सों और उनके बंटवारे के सिद्धान्तों की परिभाषा करने वाला अत्तराधिकार नियम हलाल और हराम आदि के सम्बन्ध में दिल्ली सुल्तानों ने कानूनों का जम कर उल्लंघन किया।[15]

सुल्तान के बाद अमीरों का स्थान था। वे प्रायः सुल्तान की शक्ति सम्पन्नता का समर्थन करते थे। लेकिन मिलने पर कभी कभी उसके प्रकार्यों को अपने अधिकार में कर लेते थे और यदि कोई सत्तारूढ़ वंश निर्बल और जर्जर हो जाता था तो वे उसका स्थान ले लेते थे, और स्वयं एक नवीन राजवंश की स्थापना कर लेते थे यहां तक कि यदि कोई अमीर अपने पद और सत्ता से च्युत या वंचित कर दिया जाता था तो उसके गौरव व सामाजिक सम्मान की परम्परायें

उनके उत्तराधिकारियों को सौंप दी जाती थी और वंशानुगतता के सिद्धान्त की दृढ़ समर्थक जनता के अनुमोदन से पहले जैसी शक्ति प्राप्त कर लेना केवल समय और अवसर का प्रश्न रह जाता था। एक अमीर अपने जीवन का प्रारम्भ सुल्तान या अन्य अमीर के एक दास या अनुचर के रूप में करता था और तब तक उसकी पदोन्नति होती जाती जब तक कि किसी उपयुक्त अवसर पर उसे किसी पद का गौरव और अमीर का दर्जा प्राप्त नहीं हो जाता था। अमीर हो जाने पर उसकी तथा उसके वंश की सामाजिक स्थिति सदैव के लिये सुरक्षित हो जाती थी। सिंहासनारोहण का ऐसा कोई वैध नियम न था और न कोई विशेष प्रतिष्ठा जैसी कोई चीज़ जैसे कि किसी प्राचीन राजवंश से सम्बद्ध की जाती थी और न ही सबसे बड़े पुत्र को उत्तराधिकार मिलने का ही कोई कानून था। फलतः सिंहासनाधिकारी को किसी अमीर के बढ़ते प्रभाव और शक्ति और उसके स्वतंत्र रुख अपनाये जाने के प्रवृत्ति बड़ा सतर्क रहना पड़ता था। अमीर के पास इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं था कि वह सुल्तान की अन्य प्रजा की तरह रहे या फिर विद्रोही हो जाये इस प्रकार पश्चिम के अपने जैसे अधिकारियों या अपने देश के राजपूत सरदारों के विशेषाधिकारों की तुलना में दिल्ली के अमीरों के विशेषाधिकारों में एक महत्वपूर्ण कभी यह भी कि राज्य उनकी स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन नहीं देता था और न ही उसकी पदवियां और सम्पत्ति उनके पुत्रों को उत्तराधिकार में प्राप्त करने देता था। उनकी प्रतिष्ठा उनके जीवन काल में ही उनके

अपहृत की जा सकती थी और सदैव ही उनका गौरव शासक सुल्तान की दया पर निर्भर रहता था। फिर भी इससे किसी अमीर या उसके उत्तराधिकारियों के सामाजिक महत्व पर प्रभाव नहीं पड़ता हालांकि यह नियम जब लागू नहीं होता जब सल्तनत की शक्ति का ह्रास हो गया और सुल्तान फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के बाद अमीर स्वतन्त्र शासक वंशों की स्थापना करने में सफल हो गये। उक्त परिस्थितियों में अमीर वर्ग अपने प्रभाव से जितना अधिक से अधिक हो सकता था, लाभ अर्जित करने का प्रयास करता था और यहीं से भ्रष्टाचार की गुंजाइश बढ़ जाती थी। अमीर लाभ और शक्ति अर्जित करने के लिये प्रत्येक प्रकार से प्रयत्नशील रहते थे।[16]

सल्तनत के प्रारम्भिक काल में उमरा या अमीर उसके एकमात्र नहीं तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार अवश्य थे। सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने इनकी महत्ता को यथोचित मान्यता दी। उसे पिछले शासकों को प्रदेशों और स्वयं की महत्वपूर्ण विजयों को सर्वप्रथम सुसंगठित करने का श्रेय दिया जा सकता है। राज्य की प्रतिस्थापना केवल इन अमीरों के समर्थन और भक्ति से ही सम्भव हो सकी थी। उन्होंने अपनी शक्ति को संगठित करने के लिये चालीसा का गठन किया। यह अमीर इतने प्रभावशाली हो गये थे कि चालीसा का अंत करने वाले सुल्तान बल्बन ने भी अपने पुत्र को चेतावनी दी कि कोई भी राज्य अमीर वर्ग के समर्थन के बिना उन्नति नहीं कर सकता। अमीरों की राजनीतिक शक्ति का एक

उदाहरण प्रस्तुत है जब मलिक इज्जुद्दीन बल्बन ने राजशक्ति ग्रहण की और सुल्तान बना तो इन अमीरों ने उसके स्थान पर अलाउद्दीन मसूदशाह को गद्दी पर बिठा दिया और बल्बन को उनके निर्णय के आगे झुकना पड़ा। एक बार और मलिक रिहान की चालबाजियों के कारण जब उलुग खां बल्बन को सुल्तान ने पदच्युत कर दिया तब इन अमीरों के विरोध और सैनिक प्रदर्शन के फलस्वरूप अमीरों और सुल्तान के मध्य आपस में मामला तय किया गया और सुल्तान को अपना पूर्व निर्णय बदलना पड़ा। इसी प्रकार चालीसा के दल के बदुद्दीन नामक व्यक्ति को जब सुल्तान के विरुद्ध षड़यंत्र करते पकड़ा गया तो सुल्तान ने उसे केवल अपना मंतव्य त्यागने के लिये कहा और उस अमीर को उसके इक्ता बदायूँ भेजने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया गया। इन घटनाओं से यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण मध्य काल में अमीर कतिपय सुल्तानों के काल को छोड़कर इसमें शक्तिशाली हो गये थे कि सुल्तान अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये उनके समर्थन की ओर आशा भी दृष्टि से देखते थे। ऐसी परिस्थितियों में अमीरों में भ्रष्टाचार का पनपना स्वाभाविक था वे अपनी शक्ति और प्रभुत्व में विस्तार हेतु हर सही गलत कदम उठा लेते थे अपने गुट को बढ़ाने का प्रयास करते थे। जाहिर है कि इसके लिये वे अपने समर्थकों को पद धन व अन्य प्रकार के लालच दिया करते थे जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता था। उस समय के भ्रष्टाचार का एक उदाहरण देते हुये इब्न बतूता कहा है कि यदि विदेशियों ने इन अवसरों का लाभ

नहीं उठाया तो दोष पूरी तरह उनका ही था। वे केव ल धनोपार्जन का संकल्प लेकर और शीघ्रातिशीघ्र अपने देश लौटने की भावना से ही हिन्दुस्तान आये थे। उन्होंने राज्य की वेतन भोगी नौकरियां स्वीकार नहीं की। जिनके लिये उन्हें हिन्दुस्तान में दीर्घकाल तक ठहराना आवश्यक होता है। यहाँ तक कि यदि इनमें से कुछ हिन्दुस्तान में रहने का निर्णय भी लेते थे तो कृषि की उन्नति हेतु या शासन तंत्र को अधिक कुशल बनाने के लिये सुल्तान द्वारा निर्धारित उपायों का पालन करने के स्थान पर वे येन केन प्रकारेण धन एकत्र करने के लिये अधिक उत्सुक रहते थे। विदेशी की लाभप्राप्त की प्रवृत्ति के बारे में जानने के लिये और इब्नबतूता हिन्दुस्तान से बेईमानी से सम्पत्ति प्राप्त करने के कारण ईश्वर के प्रकोप से एक विदेशी शहाबउद्दीन के विनाश और दुर्भाग्य की कामना करता है। इसी प्रकार एक और उदाहरण दृष्टव्य है। वासतव में सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने अमीरों के लिये यह आवश्यक नियम बना दिया कि वे आपस में किसी भी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने से पूर्व सुल्तान की आज्ञा ले। इसी प्रकार अलाउद्दीन ने बिना इजाजत के एक दूसरे से मिलने जुलने या भोज या सामाजिक समारोहों में आमंत्रित करने की मनाही कर दी थी उसके आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाता था।[17]

मुस्लिम समाज के उच्च वर्ग के अमीर वर्ग के अतिरिक्त सैयद भी थे। मुस्लिम समाज में ऐसा माना जाता है कि प्रत्येक सैयद में एक विलक्षण पवित्रता

का समावेश है। सम्भवतः इसलिये कि वह पैग़म्बर का कथित वंशज है। सैयदों के अतिरिक्त उल्मा वर्ग भी प्रभावशाली वर्ग था।

मुसलमान अपने पैग़म्बर की स्मृति का बहुधा अतिश्योक्तिपूर्ण सम्मान करते हैं जिसका कुछ अंश हर उस व्यक्ति को मिल जाता है जो मुहम्मद की पुत्री फातिमा के जरिये मुहम्मद का वंशज होने का दावा करता है। अब्बासियों के उत्थान और इस्लाम में शिया आन्दोलनों के प्रसार ने सैयदों की नैतिक स्थिति को दृढ़ बनाने में योग दिया है। सैयदों के प्रति आदर की भावना सल्तनत के प्रारम्भ से ही प्रबल थी यद्यपि उसके सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। अपनी मातृभमि में मंगोलों की लूटपाट से बचाने बहुसंख्यक सैयद हिन्दुस्तान में आश्रय प्राप्त करने आये और बल्बन ने उन्हें संरक्षण प्रदान किया। शासन वर्ग के संरक्षण के परिणाम स्वरूप सैयद उत्तरोत्तर प्रभावशाली और शक्ति सम्पन्न होते गये। सैयद पैग़म्बर के परिवार का वंशज होने के नाते साहसी, सत्यवादी, पवित्र और अन्य श्रेष्ठ गुणों से युक्त माना जाता था। सैयदों से छोटा मोटा काम कराना अनुचित समझा जाता था अमीर खुसरो ने एक बार एक सैयद से क्षमा प्रार्थना भी की थी। ऐसा माना जाता था कि सैयदों को तंत्र विद्याओं और अलौकिक रहस्यों का ज्ञान है इसलिये घमण्डी शासक भी उनके समक्ष असहाय हो जाते थे। 1398 ई0 के तैमूरी आक्रमण के पश्चात् दिल्ली के सिंहासन पर एक राजवंश स्थापित करने में

भी सैयद सफल हो गये। दुर्भाग्य वे इस कार्य के लिये अयोग्य थे और उनके अन्तिम शासक ने चुपचाप सिंहासन त्याग दिया तथा लज्जाजनक ढंग से बदायूं के अक्ता में आश्रय लिया। राजनीतिक शक्ति का पतन होने के बावजूद भी एक वर्ग के रूप में सैयदों की सामाजिक स्थिति बेहतर ही बनी रही और अफगान उत्तराधिकारियों ने सावधानी से और अंध विश्वास से भी सैयदों को दी गयी रियासतों और विशेष सुविधाओं का समादर किया और भ्रष्टाचार का आरोप लगने पर भी उन्हें मुक्त कर दिया जाता था। जैसा कि इस घटना से स्पष्ट है – एक बार एक सैयद को अत्यन्त ठोस आधार पर सरकारी राजस्व की खयानत करने का दोषी ठहराया गया था और सुल्तान सिकन्दर लोदी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था लेकिन सुल्तान सिकन्दर लोदी ने न केवल उक्त सैयद को मुक्त कर दिया बल्कि उसे बेईमानी और भ्रष्टाचार से प्राप्त धन रखने की भी अनुमति प्रदान कर दी गयी। इस प्रकार स्पष्ट है कि सैयद वर्ग में भ्रष्टाचार पनप चुका था और वे अपने प्रभाव में बुद्धि और धन संग्रह हेतु उचित–अनुचित प्रयास करते रहे।[18]

उल्मा वर्ग सल्तनत के विशेष कृपापात्र और सहयोगी थे। उन्होंने नियमतः मुस्लिम कानून तर्कशास्त्र अरबी और सामान्य रूप से इस्लाम के धार्मिक साहित्य तफसीर हदीस कलीम इत्यादि का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। हालांकि कुरान सामान्यतः उनकी स्थिति के बारे में वह जोर देती है कि वे ऐसे अलग वर्ग के हैं जो लोगों को सन्मार्ग पर लगाते हैं तथापि उनके लिये कुरान में कोई विशेष

प्राविधान नहीं किया गया था। शीघ्र ही लोगों के बीच मिथ्या परम्परायें प्रचलित होने लगी। कहा जाने लगा कि पैगम्बर ने कहा कि उल्मा का सम्मान करो क्योंकि वे पैग़म्बर के उत्तराधिकारी हैं जो उनका सम्मान करता है, वह इस्लाम के पैग़म्बर और अल्लाह का सम्मान करता हैं, धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने पर मिलने वाली विचित्र प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही जोर दिया गया। इस प्रकार भारत में मुस्लिम समाज के विकास की विशेष परिस्थितियों में यह आशा करना स्वाभाविक था कि उलमा अनुचित प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगा। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के पहले किसी भी शासक में उलमा की बढ़ती हुई शक्ति पर अंकुश लगाने का साहस नहीं हुआ जब कि उलमा कभी–कभी सुल्तान के हितों के विरुद्ध भी कार्य कर जाते थे। सुल्तान अलाउद्दीन ने सल्तनत के अन्तर्गत उल्मा के अधिकारों को परिभाषित करने और उनके सारे कार्यकलाप केवल निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत सीमित रखने के लिये बाध्य करना आवश्यक समझा ये सीमायें इस प्रकार थी– न्यायिक मामलों में निर्णय देना और युद्ध, धार्मिक मामलों में मध्यस्थ का कार्य करना, अन्य सारे मामले उनके अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गये थे। हालांकि सम्पूर्ण शक्ति सुल्तान के हाथों में केन्द्रित थी और वह कभी कभी सूफियों को अनुग्रहीत भी करता था, और परिस्थितियों की मांग के अनुसार बड़ी कठोरता से शासन करता था और धार्मिक बातों का उसके समक्ष कोई स्थान नहीं था। मोहम्मद तुगलक ने राज्य को बिलकुल उसी दर्जे पर रखा जिसपर

राज्य के अन्य कर्मचारियों को रखा था और वैसा ही व्यवहार करता था। दोषी पाये जाने पर उलमाओं को कठोर से कठोर दण्ड दिये जाते थे जैसा कि इस एक घटना से ज्ञात होता है – एक बार सिन्ध के कुछ धर्मशास्त्री सरकारी निधि में ख्यानत करने के दोषी ठहराये गये थे जिस पर उन्हें कठोरता से दण्डित किया गया। फिरोज तुगलक के काल में उलमा वर्ग के राजनीतिक प्रभाव में पुनः बुद्धि होने लगी और राजकीय निर्णयों में उनका हस्तक्षेप बढ़ गया। उलमा वर्ग में मोहम्मद तुगलक की असफलताओं का लाभ उठाते हुये फिरोज तुगलक को राज्य की नीतिगत निर्णयों में उलमाओं की सलाह भी मानने के लिये प्रेरित किया। बरनी भी एक बार फिरोज तुगलक द्वारा बंगाल के शासक पर विजय प्राप्त करने पर बंगाल के उलमा को धन देने के आक्रमण का उल्लेख करता है। अनेक कानूनी पुस्तकों की रचना की गयी धार्मिक विद्यालयों और अन्य संस्थाओं को नवीन प्रोत्साहन दिया गया और तैमूरी आक्रमण के समय तक उल्मा ने अपनी पूर्व स्थिति और प्रभाव पुनः प्राप्त कर लिया था, किन्तु राज्य इतना सुसंगठित था कि अपेक्षाकृत कम महत्व के कुछ मामलों को छोड़कर अन्य बड़े राजनीतिक मामलों में उनका हस्तक्षेप कम ही होता था। बल्बन को भी यह शिकायत थी कि समग्र उल्मा वर्ग में सत्यता और साहस की कमी है। बुगरा खां को यह जानकर दुःख नहीं हुआ कि ग़ैर इस्लामी और अनीश्वरवादी धर्मशास्त्रियों ने उसके पुत्र सुल्तान मुईज्जुद्दीन कैकुबाद को रमजान के अनिवार्य उपवास का पालन करने से

विमुख कर दिया और केवल अभिशप्त स्वर्ण के लोभ के कारण उन्होंने कुरान के आदेशों को जान बूझ कर तोड़ मरोड़ दिया उसने अपने पुत्र को झूठे उल्माओं का विश्वास न करने की चेतावनी दी और ऐसे धर्मशास्त्रियों से स्वयं को परे रखने के लिये कहा। इन उल्माओं को उसने ऐसे लोभी और धूर्त कहकर सम्बोधित किया जिनकी प्रिय वस्तु पर लोक नहीं बल्कि इहलोक था। मुहम्मद तुगलक का भी विचार था कि उसके समय के उल्मा एकदम अधार्मिक थे। वे सत्य को छिपाने के लिये कुख्यात थे और धन के प्रति उनके लोभ ने उन्हें दुराचारी और नास्तिक बना दिया था वे साधारण स्वार्थ सिद्ध करने वालों की स्थिति में उतर आये थे। अमीर खुसरो भी कहता है कि काजी या वे उल्मा जो न्यायिक पद पर मुस्लिम कानून के सिद्धान्तों से एकदम अनभिज्ञ हैं और वे राज्य के किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिये अयोग्य है। उनके अनुसार न तो वे सदाचारी है और न ही विद्वान। शासक के अत्याचारी होने पर उल्मा उसे अवश्य सहयोग देते थे। व्यक्तिगत जीवन में वे धार्मिक आदेशों की पूर्णताः उपेक्षा करते थे और पाप करने और इसलाम के नियमों का उल्लंघन करने से भी नहीं हिचकते थे। अमीर खुसरो के ही अनुसार एक वर्ग के रूप में धर्मशास्त्रियों की एक मात्र विशेषता थी उनका ढोंग आडम्बर और अहंकार। उल्मा का सम्मान केवल परम्परा पर आधारित था। बरनी कहता है कि अपने वर्ग के अन्य लोगों के साथ स्वयं उसने शासक की इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से जान बूझकर कुरान की आयतों के अर्थ की

खींचतान करके इस्लाम के धार्मिक आदेशों का उल्लंघन करने में सुल्तान की क्रियात्मक रूप से सहायता की पश्चाताप व्यक्त करते हुये बरनी कहता है – मैं नहीं जानता कि अन्यों के ऊपर क्या बीतेगी, किन्तु वृद्धावस्था में मेरा वर्तमान दुर्भाग्य और क्लेश मेरी कथनी और करनी का फल है।[19]

मुस्लिम समाज के निम्न वर्ग में घरेलू नौकर चाकर दास आदि आते हैं। ये प्रत्येक सम्मानित मुस्लिम परिवार के परिचित अंग थे और सल्तनतकाल में हिन्दुस्तान की मुस्लिम जनसंख्या की वृद्धि में इन्होंने योग दिया। अमीरों का जीवन युद्ध और विलास में इतना लिप्त था कि उन्हें अपने व्यक्तिगत और घरेलू कार्यों की ओर देखने का शायद ही समय मिल पाता हो। समय के प्रवाह के साथ सामाजिक व्यवहार की दृष्टि में घरेलू कार्य एक सज्जन व्यक्ति के गौरव और सम्मान के अयोग्य समझे जाने लगे। इस प्रकार जहां तक निम्न वर्ग की राजनीतिक स्थिति का प्रश्न है उनकी स्थिति शासक वर्ग और उच्च्व वर्ग की अपेक्षा बिल्कुल नगण्य थी। आर्थिक दृष्टि से वे दीन–हीन ही रहे तो ऐसी स्थिति में इस वर्ग में भ्रष्टाचार की गुंजाइश ही नहीं बचती।

भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य की स्थापना के साथ ही मध्यकालीन भारतीय इतिहास में एक नवीन मोड़ आता है, जब भारत में चन्द राजनीतिक उथल–पुथल के पश्चात् एक सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था आकार लेने लगती है। मुगल

साम्राज्य का संस्थापक जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर न केवल एक योद्धा था बल्कि एक कुशल प्रशासक भी था। उसने अपने अल्प शासनकाल (सन् 1526–1540) में ही अनेक राजनीतिक सिद्धान्तों का बीजारोपण किया जो कालांतर में अकबर के काल तक आते–आते वृक्ष बन गए।

वास्तव में बाबर की धमनियों में एशिया के दो प्रमुख महान विजेताओं चंगेज़ खां तथा अमीर तैमूर के महान वंशजों का रक्त था। उसका पिता उमर शेख मिर्ज़ा अमीर तैमूर की चौथी पीढ़ी तथा मां कुतलुग निगार खानम चंगेज़ खां की तेरहवीं पीढ़ी में थी। बाबर अपनी बाल्यावस्था में ही अनेक जातियों व संस्कृतियों के सम्पर्क में आया था, उनसे प्रभावित हुआ। इसके अतिरिक्त वह अपने पूर्वजों की परम्पराओं व राजनीतिक आदर्शों से भी अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस काल में मंगोल तथा तैमूरी अपने शासक को साम्राज्य की धुरी ही नहीं वरन सर्वेसर्वा भी मानते थे। मंगोल साम्राज्य कबायली आधार पर संगठित था। सभी कबायली सरदारी के ऊपर एक शासक होता था, जो कि 'महान खान' कहलाता था। 'महान खान' केवल एक राजनीतिक तथा सैनिक पद होता था। वह पूर्णतः सार्वभौम था तथा उसमें सम्पूर्ण सम्प्रभुता निहित थी। इस्लामी कानून व शरीयत का उसपर किसी प्रकार का अंकुश नहीं था। उसके राजस्व सिद्धान्तों के बाबर ने प्रेरणा ली। दूसरी ओर बाबर के राजनीतिक विचारों पर तैमूर जो कि राजस्व के दैवी सिद्धान्तों में विश्वास करता था, का भी प्रभाव पड़ा। तैमूर के विचार में

चूंकि इन संसार में एक ही ईश्वर है व उसका सामना कोई भी नहीं कर सकता अतः पृक्थ्वी पर उनका प्रतिनिधि सम्राट भी एक ही होना चाहिये। मुसलमान होने के नाते उसने तत्कालीन शासकों की भांति स्वयं को इस्लाम का प्रचारक व पुनरुद्धारक भी कहना प्रारम्भ किया।[20] इस प्रकार बाबर तैमूरी राजत्व सिद्धान्तों व राजनीतिक आदर्श से भी अत्यधिक प्रभावित हुआ।

बाबर हालांकि अपने वंश के गौरव शासक की सर्वोच्चता में दृढ़ विश्वास से रखता था, किन्तु फिर भी उसने अपने राजत्व सिद्धान्तों को लचीला बना दिया था। वह अपने सामन्तों से मित्रवत व्यवहार करता था, क्योंकि वह जानता था कि सामन्ती युग में सम्राट की प्रतिष्ठा सामन्तों के सहयोग पर निर्भर करती है। उसका लोक जीवन व्यक्तिगत जीवन से भिन्न हुआ करता था वह दरबार में उनके साथ भिन्न प्रकार से व्यवहार करता था व उन्हें अनुशासन में रखता था।[21] संक्षेप में काबुल की विजयोपरान्त बाबर के राजत्व सम्बन्धी विचार प्रमुख स्वरूप ग्रहण करने लगे थे उसका राजनीतिक स्वार्थ भी सदैव उसका मार्गदर्शन करता रहा।

हिन्दू व मुस्लिम राजनीतिक विचार के अनुसार राज्य का सिद्धान्त ही निरंकुशता का सिद्धान्त होता था। समाज के अत्याचार, अशांति, कलह व द्वेष की समस्याओं को दूर करने के लिये राज्य की आवश्यकता होती है बिना शक्तिशाली

शासक के शांति व न्याय की स्थापना नही की जा सकती। यह संसार स्वार्थीदंभी व लोलुप तथा विलास प्रिय लोगों से भरा है। अबुल फजल भी ने कहा है कि यदि बादशाही न हो तो अराजकता व अशांति का झंझावत कभी समाप्त नहीं हो सकता और न ही स्वार्थी महत्वाकांक्षी भी लुप्त हो सकती है। यह संसार इन्द्रिय लोलुपता व अराजकता के भार से दबा हुआ है। यदि सम्राट न हो तो वह गढ़े में डूब कर नष्ट हो जाये। शासक के न्याय के प्रकाश में अनेक व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञाकारिता का मार्ग अपना लेते हैं तथा दण्ड के भय से या आवश्यकता वंश शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगते हैं। अबुल फजल आगे कहता है कि सम्राट के राजत्व सिद्धान्त में प्रजा के प्रति पिता तुल्य व्यवहार होना चाहिये। शासक में लोक कल्याण की भावना होनी चाहिये तथा उसे राज्य की समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रीय करके उनका निवारण कर राज्य को सशक्त व स्वस्थ बनाना चाहिये अत्याचार दूर करना चाहिये। उसका परम कर्तव्य है कि वह जन साधारण की योग्यता का पूर्ण उपयोग करें। उसका कर्म तो केवल विजय प्राप्त करना या जन साधारण की रक्षा करना व उसकी निगरानी करना होता है। उसे कभी भी सोना चांदी या सम्पत्ति एकत्र कर सिंहासन को सुसज्जित नहीं करना चाहिये। अबुल फजल के इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मुगल काल में भी भ्रष्टाचार की काफी गुंजाइश थी। लेकिन मुगल सम्राट राजनीतिक, सामाजिक नियमों तथा तत्कालीन परम्पराओं से पूर्णतः बंधे हुये थे, जिसके कारण चाहते हुये भी वे

पथभ्रष्ट नहीं हो सकते थे। पूर्णतः स्वतन्त्र व स्वेच्छाचारी होते हुये भी उनकी स्वेच्छाचारिता सीमित थी।[22]

. सम्राट मुगल काल में 'वज़ीर' का पद सर्वाधिक महत्वपूर्ण था मुगल साम्राज्य की स्थापना से पूर्व सल्तनत काल में वजीर के पद का विकास क्रमशः हो चुका था। शक्तिशाली सुल्तानों के अधीन तो वे प्रभावहीन रहे लेकिन शक्तिहीन शासकों के अन्तर्गत उन्होंने सुल्तान के अधिकारों का उपयोग करते हुये राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका किया था। बाबार से लेकर औरंगजेब तक इस पद के उत्तरदायित्व एवं महत्व में निरन्तर परिवर्तन होते रहे। बाबर का वजीर निजामुद्दीन खलीफा योग्य प्रशासक व कुशल योद्धा था। बाबर के जीवन के अन्तिम दिनों में उसने हुमायूं के स्थान पर मेहदी ख्वाजा को बाबर का उत्तराधिकारी बनाना चाहा। किन्तु उसकी योजना असफल रही हुमायूं के शासन काल के प्रारम्भ में अमीर अबैस तथा हिन्द बेग उसके वजीर थे। फारस से लौटने के बाद उसने करांचा खां को वजीर नियुक्त किया। उसने अपने अधिकारों का प्रयोग करके अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसके प्रभाव को कम करने के लिये हुमायूं ने 1547 में ख्वाजा गाजी को मुशरिफ–ए–दीवान नियुक्त किया और उसे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने की आज्ञा दी। इस प्रकार हुमायूं ने वित्तीय और प्रशासनिक कार्यों को पृथक कर वजीर के अधिकारों को दो भागों में विभाजित कर दिया जिससे नाराज होकर करांचा खां ने हुमायू का साथ छोड़कर कामरान की सेवा

ग्रहण कर ली। 1548 में उसने ख्वाजा कासिम को भ्रष्टाचार के आरोप में ख्वाजा कासिम को भ्रष्टाचार के आरोप पर हटा दिया गया। उसके स्थान पर हुमायूं ने सुल्तान अली को वजीर नियुक्त किया। सुल्तान अली 1556 तक इस पद पर कार्यरता रहा।[23]

हुमायूं के मृत्योपरान्त अकबर गद्दी पर बैठा। अकबर ने अपने संरक्षक बैरम खां को वकील ए सल्तनत की उपाधि देकर सम्मानित किया। जहांगीर के काल में भी वजीर का पद महत्वपूर्ण रहा और शरीफ खान को अमीर उल उमरा की उपाधि दी गयी। बाद में आसफ खां वजीर बना उसके बाद शाहजहां ने भी वजीर के पद पर आसफ खां को बनाये रखा। औरंगज़ेब के शासन में भी मीर जुमला जैसे योग्य वजीर रहे। इस प्रकार बाबर से लेकर औरंगजेब के शासन काल तक वजीर का पद सम्मानित रहा और उनमें भ्रष्टाचार की गुंजाइश काफी कम रही। लेकिन जैसे ही अयोग्य और अशक्त शासक सत्तारूढ़ रहे वे येन केन प्रकारेण अपनी सत्ता और प्रभाव में वृद्धि कर लेते और अवसर मिलने पर भ्रष्टाचार में लिप्त हो गये। भ्रष्टाचार की गुंजाइश वित्तीय एवं राजस्व विभाग में ही अधिक थी। इस विभाग का अध्यक्ष दीवान ए आला या दीवान ए कुल या दीवान होता था। जिसे वजीर भी कहते थे। वित्तीय मामलों में वह सम्राट का नायब भी होता था। मुगल काल में दीवान शब्द का प्रयोग वित्त एवं राजस्व मंत्री के लिये होता था। अकबर के काल में इस विभाग के लिये कभी कभी वजीर

लेकिन प्रायः दीवान शब्द का प्रयोग किया गया है। जहांगीर के काल में दीवान या वजीर शाहजहां के काल में दीवान ए कुल या दीवान ए आला वजीर ए आजम व वजीर मुअज्जम शब्दों का प्रयोग वित्तीय विभाग के प्रमुख मंत्री के लिये किया गया। वास्तव में दीवार ही राजस्व व वित्तीय विभाग का प्रमुख मंत्री होता था। वजीर व दीवान के अलावा दीवान–ए–खालसा, दीवान–ए–तन, दीवान–ए –जागीर, दीवान–ए–बयूतात, दीवान–ए–सआदत, मीर बख्शी, सद्रे उस सुदूर अनेक वरिष्ठ जैसे प्रशासनिक अधिकारी थे जिनके अनेक अवसरों पर भ्रष्टाचार में लिप्त होने के प्रमाण समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। उदाहरणार्थ सम्राट अकबर के कार्यकाल में सद उस सुदूर अब्दुल नबी पर भ्रष्टाचार के गम्भीर आरोप लगाये गये। शेख नबी को सन् 1565 में सद नियुक्त किया गया था। वह धर्मान्ध मुल्ला था। इबादत खाने में होने वाले वाद विवादों से शेख नबी के ज्ञान का स्पष्ट हो गया फलतः 1579 में उसे पदच्युत कर दिया गया। अकबर को पहले से ही सद्र की निष्ठा पर सन्देह था। अतएव उसने सद्र के कार्यों की जांच करवा दी जिससे उसे ज्ञात हुआ कि सद्र उस सुदूर शेख अब्दुल नबी भ्रष्ट एवं रिश्वतखोर था। सद्र द्वारा दिये गये अनुदानों के कारण बड़ी संख्या में उल्मा धनी व भ्रष्टाचारी हो गये थे। उल्माओं के बढ़ते हुये प्रभाव व सद्र के बढ़ते हुये अधिकारों ने राज्य के समक्ष नया संकट पैदा कर दिया। अनेक रूढ़िवादी विचार व धर्म के प्रति संकुचित दृष्टिकोण अकबर व उसके समर्थकों को उदारवादी से

मेल न खाते थे। अकबर को यह भी पता चला कि अब तक जितने सद्र उसके शासन काल में हुये वे सभी अत्याचारी लोलुप तथा बेइमान थे। अनुदान प्राप्तकर्ता उन्हें रिश्वत देकर अपने अधिकार में कर लिया करते थे। फलतः अकबर ने सर्वप्रथम अपने सद्र के अधिकारों में कमी करने का प्रयास किया फिर जिस अनुचित व्यक्तियों के पास बिना किसी कानूनी अधिकार के भूमि अनुदान के रूप में थी उनकी जांच करवायी शेख अब्दुल नबी (1562–78) के सद्र नियुक्त होने के पूर्व जिन्हें अनुदान दिये गये थे अकबर ने उन्हें अहल ए आदत के रूप में मान्यता दी अब्दुल नबी ने जिन अनुदानों की पुष्टि की अकबर ने वे अनुदान उन्हीं के व्यक्तियों के पास रहने दिया जिन व्यक्तियों के पास 500 बीघा या उससे अधिक भूमि अनुदान के रूप में थी। अकबर ने उनकी जांच करवायी व उनसे पुनः अनुमोदन प्राप्त करने के लिये कहा।[24]

अकबर ने सदारत विभाग में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने हेतु अनेक महत्वपूर्ण सुधार करवाये। उसने सुद्र की योग्यतायें निर्धारित की और अधिकारी को सीमित किया था अब सुद्र किसी को स्वयं अनुदान नहीं दे सकता। वह केवल संस्तुत कर सकता है।[25]

इस प्रकार मुग़ल काल में हालांकि सम्राट की प्रशासक ही मुख्य धुरी था और उच्च व साधारण अधिकारी उसके आदेश पर कार्य करते थे। अकबर के

समय से नौकरशाही का संगठन इस प्रकार से हुआ कि प्रशासन के किसी भी विभाग का अस्तित्व स्वतन्त्र न रह सका। केन्द्रीय प्रशासन के सभी विभाग किसी न किसी रूप से एक दूसरे से जुड़े हुये थे। ऐसी स्थिति में कोई मंत्री मनमानी ढंग से कार्य नहीं कर सकता था लेकिन फिर भी तनिक भी नियन्त्रण ढीला होने पर कर्मचारी अधिकारी भ्रष्ट होने लगते थे।

सन् 1526 का वर्ष मध्यकालीन भारतीय इतिहास में दिल्ली सल्तनत के पतन और मगल साम्राज्य के संस्थापन का वर्ष था जिसमें बाबर ने पानीपत के प्रथम युद्ध में अन्तिम लोदी सुल्तान इब्राहिम लोदी को परास्त करके मुगल इतिहास का शुभारम्भ किया था यद्यपि सन् 1540 ई0 में शेरशाह सूरी ने एक बार पुनः द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापना कर दी थी लेकिन लगभग पन्द्रह वर्षो बाद ही हुमायूं ने पुनः सूर साम्राज्य को समाप्त करके मुगल साम्राज्य की सुदृढ़ता से स्थापना कर दी। यद्यपि सन 1556 में हुमायूं की अकस्मात मृत्यु ने मुगल साम्राज्य को वह सुदृढ़ आधार प्रदान किया जिसके कारण ही लगभग तीन वर्षो तक मुगलों ने भारत पर राज्य किया। वास्तव में मुगल साम्राज्य का वास्तविक विकास अकबर के ही काल में प्रभावी रूप से प्रारम्भ होता है जो औरंगजेब के काल तक निर्बाध गति से चलता रहा। अकबर–हुमायूं के मृत्योपरान्त सन् 1556 ई0 में मुगल सम्राट घोषित किया गया। लेकिन सन् 1556 ई0 से लेकर सन् 1560 ई0 तक अकबर की विजयों का वास्तविक श्रेय उसके अतालिक (संरक्षक) बैरम

खां को ही प्राप्त है। सन् 1560 में बैरम खां के पश्चात स्वयं अकबर ने साम्राज्य विस्तार के कार्य का संचालन किया। आजीवन संघर्ष और अभियानों द्वारा एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बन गया। सन् 1561 ई0 से लेकर सन् 1605 ई0 तक अकबर ने मुगल साम्राज्य नींव सुदृढ़ करके एक शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया। इस काल में अकबर ने न केवल साम्राज्य का विस्तार किया वरन् प्रशासन में भी अनेक महत्वपूर्ण सुधार लागू किये जैसे भूमि सुधार के सम्बन्ध में आइन–ए–दहसाला और मनसबदारी प्रथा आदि अकबर ने समन्वयवादी नीति का अनुपालन करते हुये दीन–ए–इलाही की स्थापना की। सम्राट अकबर की उपलब्धियों के मद्देनजर ही अनेक इतिहासकारों ने अकबर को राष्ट्रीय शासक भी स्वीकार किया। उक्त सन्दर्भ आधुनिक इतिहासकार डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी यह कहते हैं कि अकबर ने संयुक्त भारत के निर्माण हेतु धैर्यपूर्वक प्रयत्न किया वह अपने युग का प्रसाद और निर्माण दोनों था तथा उनकी गणना विश्व के महान सम्राटों में की जा सकती है। अकबर की न्यायप्रियता इतिहास प्रसिद्ध है। इन सन्दर्भो में वह स्वयं आइन ए अकबरी मे कहता है कि यदि मैं किसी गलत कार्य का अपराधी हूं तो मैं स्वयं अपने विरुद्ध निर्णय दूंगा।

अकबर की मृत्यु के पश्चात नूरुद्दीन मोहम्मद जहांगीर मुगल सम्राट बना जिसने सन् 1605–1627 ई0 तक भारत पर शासन किया। जहांगीर ने स्वयं बाबर की ही भांति तुजुक–ए–जहांगीरी नामक आत्मकथा ग्रन्थ की रचना चित्रकला में

विशेष रुचि थी और उसका काल चित्रकला की दृष्टि से स्वर्ण युग था। जहांगीर ने भी अपने पिता सम्राट अकबर की विस्तारवादी नीति का ही पालन किया तथा मुगल साम्राज्य की सीमाओं को और विस्तृत करने का प्रयत्न किया। जहांगीर का व्यक्तित्व और चरित्र विरोधाभासों से युक्त था। जहांगीर के ही काल में एक और महत्वपूर्ण घटना मलिका नूरजहां का उदय होना था जिसने मुगलकालीन इतिहास से अपना नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित कराया। डॉ0 बेनी प्रसाद भी कहते हैं कि यद्यपि जहांगीर के इतिहास का राजनीतिक पक्ष भी काफी रोचक है किन्तु उसका वास्तविक सौरभ सांस्कृतिक विकास में अन्तर्निहित है जहांगीर की आत्मकथा कतिपय दोषों के बावजूद विश्व की श्रेष्ठतम पुस्तकों में से एक है। जहांगीर ने ही काश्मीर में शालीमार बाग और निशात बाग जैसे प्रसिद्ध बागों का निर्माण कराया जो अपनी सुन्दरता और आकर्षण के कारण आज भी प्रसिद्ध हैं।[26]

जहांगीर के पश्चात शाहजहां सिंहासन पर बैठा। शाहजहां का काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण युग माना जाता है। शाहजहां 6 फरवरी सन् 1628 ई0 को गद्दी पर बैठा। उसके सम्बन्ध में यह कथन सत्य है कि शाहजहां रक्त की नदी तैर कर सिंहासन पर आसीन हुआ। क्योंकि उसे सिंहासन पर बैठने के पूर्व काफी संघर्ष करना पड़ा शाहजहां के काल में एकता और संस्कृति का पर्याप्त विकास हुआ विशेषकर वास्तु कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। ताजमहल जैसी विश्वप्रसिद्ध इमारत का निर्माण हुआ जिसे शाहजहां ने अपनी प्रिय बेगम की याद

में बनवाया था। साहित्य के क्षेत्र में भी पण्डित राज जगन्नाथ जैसे महान विद्वान हुये जिनहोंने भागिनी विलास और गंगा लहरी नामक पुस्तक लिखी। स्पष्टतः सम्पूर्ण मध्य काल में शाहजहां का राज्य काल अत्यधिक वैभव और ऐश्वर्यपूर्ण था। चतुर्दिक शांति और सम्पन्नता का वातावरण था। साहित्य और कला की प्रगति हो रही थी इसी काल में विशालतम और भव्य इमारतों का निर्माण हुआ और महत्वाकांक्षी सामरिक अभियान भी सफल हुये परन्तु इसी शानोशौकत और भव्य ऐश्वर्य प्रदर्शन के पीछे अवनति के चिन्ह भी दृष्टिगोचर होते हैं। उन विनाशकारी प्रवृत्तियों के स्त्रोत शाहजहां के ही राज्य काल में विकसित हुये जिनके परिणामस्वरूप कालान्तर में मुगल काल का समापन हो गया। शाहजहां ने सन् 1657–58 तक राज्य किया।[27]

औरंगजेब ने सन् 1658 से लेकर 1707 ई0 तक भारत पर शासन किया। औरंगजेब मध्य कालीन इतिहास का सर्वाधिक विवादास्पद शासक था। शाहजहां के मृत्योपरान्त उसके पुत्रों द्वारा शुजा औरंगजेब और मुराद में सत्ता प्राप्ति हेतु भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें अंतत औरंगजेब को विजय मिली यह संघर्ष इतिहास में उत्तराधिकार के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुआ। औरंगजेब का कार्यकाल समस्त मुगल सम्राटों में सबसे अधिक था और उसका साम्राज्य भी सबसे अधिक विशाल था औरंगजेब के पश्चात ही मुगल साम्राज्य के पतन प्रक्रिया तीव्र हो गयी। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम जहांदार शाह फरुखसियर अहमद

शाह आलमगीर द्वितीय, शाह आलम द्वितीय, अकबर द्वितीय व बहादुर शाह ज़फर के नाम से प्रसिद्ध हुआ निर्बल और अयोग्य सिद्ध हुये।[28]

संक्षेप में बाबर ने सन् 1526 ई0 में जिस मुगल राजवंश की नीव डाली। वह 1658 ई0 में गद्दीनशीन होने वाले औरंगजेब के शासन काल तक समृद्ध और शक्तिमान रहा, किन्तु शासन 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्योपरान्त लड़खड़ा गया और जनवरी 1761 में हुये पानीपत के तृतीय संग्राम में भारत में मुगल साम्राज्य के इतिहास की इति श्री कर दी और भारत में ब्रिटिश सत्ता स्थापना की प्रक्रिया शुरू हो गयी।

सन्दर्भ -

1. डॉ0 आर0पी0 त्रिपाठी – सम अस्पैक्ट ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 90–91
2. प्रो0 ए0बी0 पाण्डेय – मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 84–85
3. ईश्वरी प्रसाद – हिस्ट्री ऑफ मेडिवल इण्डिया, पृ0 152–153
4. एस0एच0 हादीवाला – स्टडीज़ इन इण्डो–मुस्लिम हिस्ट्री, पृ0 87–88
5. पी0 सरन – स्टडीज इन मेडिविल इण्डियन हिस्ट्री, पृ0 48–49
6. सी0वी0 वैद्य – हिस्ट्री ऑफ मेडिविल इण्डिया, पृ0 84–85
7. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – तुग़लककालीन भारत, पृ0 143–144
8. वही, पृ0 165–166
9. इब्न बतूता – किताब–उल–रेहला, पृ0 82–83, अनुदित – मेंहदी हसन
10. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – तुग़लककालीन भारत, पृ0 188–189
11. वही, पृ0 201–202
12. आर0सी0 जौहरी – हिस्ट्री ऑफ फिरोज़ शाह तुग़लक, पृ0 195–196
13. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – तुग़लककालीन भारत, पृ0 209–210
14. के0ए0 निज़ामी – सम आस्पेक्ट ऑफ रिलिजन एण्ड पालिटिक्स, पृ0 192–194
15. मोहम्मद यासीन – सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, पृ0 107–108

16. के0एम0 अशरफ – लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ प्यूपल ऑफ हिन्दुस्तान, पृ0 79–80

17. वही, पृ0 87–89

18. पी0 सरन – इस्लामिक पॉलिसी, पृ0 107–108

19. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – आदि तुर्ककालीन भारत, पृ0 189–191

20. जे0 ब्रिक्स – हिस्ट्री ऑफ द राइस ऑफ मोहम्मडन बाबर इन इण्डिया, पृ0 141–142

21. हरिशंकर श्रीवास्तव – मुग़ल शासन प्रणाली, पृ0 68–69

22. वही, पृ0 72–74

23. डॉ0 आर0पी0 त्रिपाठी – सम आस्पेक्ट ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ0 180–187

24. पी0एन0 चोपड़ा – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मुग़ल एज, पृ0 80–89

25. वही, पृ0 104–109

26. आर0पी0 त्रिपाठी – मुग़ल साम्राज्य के उत्थान–पतन, पृ0 157–162

27. इलियड एण्ड डाउसन – भारत का इतिहास, पृ0 38–40

28. वही, पृ0 58–59

तृतीय अध्याय

सामाजिक भ्रष्टाचार

भारत में इस्लाम धर्म के आगमन से पूर्व हिन्दू समाज पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था इस देश की शत–प्रतिशत संख्या हिन्दुओं की ही थी। आठवीं शताब्दी से यद्यपि हिन्दू सामाजिक ढाँचे में बाह्य रूप से परिवर्तन न हुए परन्तु समय के साथ–साथ उसमें आन्तरिक परिवर्तन होते रहे और उसकी गतिशीलता पूर्वतः बनी रही। साथ ही समाज में प्रत्येक स्तर पर भ्रष्टाचार विद्यमान रहा।

पुरातन हिन्दू समाज चार वर्गों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभाजित था। यह विभाजन मुख्यतः वर्ण जाति एवं व्यवसाय पर आधारित था हिन्दुओं में यह मान्यता रही कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रियों की उत्पत्ति उनके भुजाओं से, वैश्यों की उत्पत्ति उनके उदर से और शूद्रों की उत्पत्ति उनके चरणों से हुई, परन्तु यह मान्यता तार्किक और न्यायसंगत नहीं। वास्तव में कर्म व ज्ञान ने वर्ण या जाति का निर्धारण करके ही हिन्दू समाज को चार भागों में विभाजित किया। ब्राह्मणों का कर्तव्य ईश्वर का चिन्तन मनन पूजा–पाठ अध्ययन, अध्यापन करना तथा ईश्वर की उपासना हेतु अन्य दो वर्गों को उन्मुख करना, उन्हें मोक्ष का मार्ग दिखाना और उन्हें धर्मानुसार सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना तथा विभिन्न संस्कारों को सम्पन्न कराना था। केवल ब्राह्मणों को ही वेद उपनिषद भगवद्गीता तथा

अन्य पुनीत धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने का अधिकार था अपनी धार्मिक निष्ठा विद्वता एवं पवित्रता के कारण ही उन्हें भारतीय हिन्दू समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ। विभिन्न परिस्थितियों में ब्राह्मणों में अनेक क्षेत्रीय जातियाँ समय–समय पर उत्पन्न होती रही और इस प्रकार से ब्राह्मण विभिन्न उपजातियों, गोत्रों तथा क्षेत्रीय या प्रादेशिक जातियों में विभाजित होते चले गये। मध्य काल में भक्ति के स्वरूप में परिवर्तन होते ही ब्राह्मणों में कई वर्ग और उपवर्ग हो गये। अनेक ब्राह्मणों ने अपना पैतृक व्यवसाय बनाये रखा वे पूर्वतः ज्ञान अर्जित करने ईश्वर की भक्ति चिन्तन मनन अध्ययन व अध्यापन तथा संस्कारों के सम्पन्न कराने में लगे रहे। उन प्रदेशों में जहाँ मुसलमान आक्रान्ताओं में मन्दिरों को कोई क्षति नहीं पहुँचाई वहाँ वे पुरोहितायी करते रहे और इष्टदेव या देवी की पूजा अर्चना में लगे रहे, अन्य पुरोहित हिन्दू राजाओं की सेवा में राजपुरोहित के रूप में राज्याश्रय में रहकर अपना विशिष्ट कर्त्तव्य निभाते रहे ऐसे पुरोहितों का कार्य राजमहल में देवी–देवता की पूजा अर्चना करना राजाओं के लिए शुभ मुहुर्त निकालना तथा संस्कारों को विधिवत् सम्पन्न करवाना तथा उन्हें परामर्श देना होता था। ब्राह्मणों में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हुआ जो कि पैतृक या पुरोहितायी व्यवसाय न अपना सका और उसने कृषि या किसी अन्य प्रतिष्ठित व्यवसाय को अपनाया। संक्षेप में यद्यपि ब्राह्मण समाज के वाह्य स्वरूप में पूर्व

मध्य–काल में कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है परन्तु अन्दर ही अन्दर उसमें अनेकानेक परिवर्तन होते रहे।[1]

हिन्दू समाज का अन्य दूसरा प्रतिष्ठित वर्ग क्षत्रियों का था उनका मुख्य कर्त्तव्य युद्ध करना, देश की रक्षा करना, धर्म व समाज की रक्षा करना तथा शासन करना था। देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने का पूर्व दायित्व उनके कन्धों पर था। तेरहवीं शताब्दी से पूर्व वे अपने बाहुबल, सैन्य शक्ति, साहस तथा सूक्ष्म प्रशासनिक अनुभव से उपरोक्त सभी कर्त्तव्यों का पालन करते रहे और अपने दायित्व का वहन करते रहे। दुर्भाग्यवश बहुराज्य व्यवस्था के होने से क्षत्रिय राजन पारस्परिक युद्धों में उलझे रहे और अपने शौर्य का प्रदर्शन करते–करते अपनी राजनीतिक शक्ति को क्षींण करते रहे। अन्तोगत्वा जब उत्तरी भारत पर ग़जनवियों और गौरी तुर्कों ने भयावह आक्रमण किये या दक्षिण भारत पर खिलजियों व तुगलकों ने आक्रमण किये तो वे वाह्य आक्रमणों के झंझावात के सम्मुख अधिक समय तक ठहर न सके। केवल राजपूताना को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों में क्षत्रिय जिनके लिए पर्यायवाची राजपूत शब्द का प्रयोग होने लगा था, शक्ति व अधिकार विहीन हो गये। दीर्घकाल तक उत्तरी भारत के मुसलमान शासकों ने उन्हें अपनी सेवा में यद्यपि न लिया परन्तु वे दिल्ली सल्तनत की सीमाओं में राना रावत राय या भूमि पतियों के रूप में रहे। राजपूतों को राज्य की ओर से सम्मान

प्राप्त न होने के कारण उनका पुनरोत्थान न हो सका। पूर्व मध्यकाल में सम्पूर्ण क्षत्रिय या राजपूत समाज अनेक जातियों, उपजातियों, कबीलों में विभाजित रहा यह जातियाँ व उपजातियाँ न केवल राजपूताना में ही वरन् अन्यत्र विभिन्न प्रदेशों में उत्पन्न हुई और होती रही अनेक राजपूतों ने अस्त्र–शस्त्र उतारकर कृषि वाणिज्य व्यापार तथा अन्य व्यवसाय जीविकोपार्जन हेतु अपनाये। तथापि बाहर से क्षत्रिय या राजपूत समाज ज्यों का त्यों दृष्टिगोचर होता रहा, परन्तु उसमें समय के साथ–साथ अनेक आन्तरिक परिवर्तन होते रहे। समस्त जगत में मानवीय क्रियाओं का संचालन अर्थ के बिना सम्भव नहीं है। प्राचीन काल से ही आर्थिक व्यवस्था के मुख्य आधार स्तम्भ वैश्य रहे। हिन्दू समाज का तृतीय वर्ग वैश्यों का था। वैश्यों का कार्य वाणिज्य व्यापार करना तथा कृषि करना था। तेरहवीं शताब्दी से पूर्व इस देश में समस्त व्यापारिक क्रियायें वैश्यों द्वारा संचालित की जाती रही। पूर्व मध्यकाल में भी यद्यपि देशी व विदेशी मुसलमान व्यापारियों के द्वारा वाणिज्य और व्यापार में प्रवेश करने से वैश्यों की स्थिति को कुछ ठेस अवश्य पहुँची परन्तु उनकी कुशाग्र बुद्धि, क्रय–विक्रय में अतुलनीय क्षमता व ज्ञान के कारण वे आर्थिक क्षितिज पर छाये रहे। पूर्व मध्यकाल में वैश्य अनेक अन्य पर्यायवाची शब्दों से जाने जाते थे, जैसे कि मुल्तानी, बानिक, बनिया, वक्काल, व्यूपारी आदि। जैसे–जैसे इस देश में कृषि उत्पादन व गैर कृषि उत्पादन की मात्रा

तके वृद्धि हुई कुटीर उद्योगों का विकास हुआ, मुद्रा प्रसार हुआ तथा आन्तरिक अर्न्तप्रादेशिक अर्न्तसमुद्रतटीय और विदेशों से आयात–निर्यात व्यापार की सम्भावनायें बढ़ी तथा जल–थल मार्ग व्यापार के लिए खुले, व्यापारी समुदाय में व्यवसायिक गतिशीलता के कारण अनेक अन्य व्यवसाय उत्पन्न हुए और उनके साथ नवीन जातियाँ व उपजातियाँ मध्यकाल में उत्पन्न हुई। इसी वैश्य समाज में सेठ साहूकार महाजन सर्राफ ऋणदाता आदि के वर्ग उत्पन्न हुए और उनके साथ नवीन जातियाँ व उपजातियाँ। इसके अतिरिक्त अनेक वैश्यों ने पैतृक व्यवसाय छोड़कर अन्य व्यवसायों में भी प्रवेश किया जिसके कारण उसका विभाजन निरन्तर होता रहा।[2]

हिन्दू समाज के अनेक वर्गों एवं उपवर्गों में कर्म या व्यवसाय अथवा जाति के अनुसार सबसे अधिक शोषित दलित व निम्न वर्ग था, जिसमें निम्नोत्तर जातियाँ जिसमें अनुसूचित जातियाँ थी हिन्दू समाज की सर्वण जातियाँ निम्न वर्ग को तिरस्कृत दृष्टि से देखती थी और उसका शोषण करती थी निम्न वर्ग को कोई सामाजिक आर्थिक धार्मिक व राजनीतिक अधिकार न थे उसका कार्य केवल उच्च वर्गों की सेवा करना और उससे दूर रहकर दरिद्रता में अपना जीवन व्यतीत करना था। इस निम्नोत्तर वर्ग के सदस्य न तो कोई प्रतिष्ठित व्यवसाय अपना सकते थे और न ही वे जीवन में प्रगति की ओर अग्रसर हो सकते थे। पूर्व मध्यकाल में इस्लाम व सूफीवाद

ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। फलतः सहस्त्रों की संख्या में उन्होनें इस्लाम को अंगीकार कर मुसलमान समाज में प्रवेश कर अपनी स्थिति सुधार ली। यही नहीं भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् उन्हें नवीन व्यवसायों को अपनाने का भी अवसर मिला अपितु सुल्तानों के शाही महलों तथा अमीरों की हवेलियों में उन्हें विभिन्न पदों पर नवमुसलमानों के रूप में कार्य करने का अवसर मिला इसके विपरीत जिन लोगों ने नवीन धर्म न अपनाया वे निःसहाय दरिद्र तथा शोषित बने रहे।

मध्य काल में कुछ नवीन वर्गों ने अपना समुचित स्थान अपनी योग्यता के कारण बना लिया। इस देश के लगभग सभी प्रदेशों में ऐसे वर्गों की उपस्थिति से इन्कार नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ– पंजाब व उत्तर प्रदेश में खत्री, बिहार, बंगाल तथा अन्य प्रदेशों में कायस्थ आदि। नवीन जातियों या उनमें उपजातियों का जन्म होना सामाजिक गतिशीलता का प्रमाण है। संक्षेप में सम्पूर्ण पूर्व मध्यकाल में हिन्दू समाज में अर्न्तव्यवसायिक, अर्न्तजातीय तथा अर्न्तप्रादेशिक गतिशीलता दिखाई देती है। यूँ तो हिन्दू समाज 12वीं शताब्दी से अनेक कारणों से चरमराने लगा था व पुरातन व्यवस्था धीरे–धीरे टूटने लगी थी, किन्तु विदेशी आक्रमणों के कारण उसका आन्तरिक ढाँचा धीरे–धीरे बदलने लगा। एकेश्वरवाद व निर्गुण ब्रह्म की उपासना, वाह्य आडम्बरों व मूर्ति पूजा पर प्रहार के कारण धीरे–धीरे जाति–पाति

के बन्धन ढीले होने लगे। जैसे ही क्षत्रिय राज्य तुर्कों द्वारा नष्ट होने लगे और क्षत्रियों की शक्ति का वैसे हुआ वैसे ही ब्राह्मणों के पुरोहित वर्ग का अस्तित्व पूर्व जैसा न रहा। अनेक ब्राह्मणों ने अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अन्य व्यवसाय ग्रहण कर लिये। उन्होनें ज्योतिशास्त्र का अध्ययन कर ज्योतिषी का व्यवसाय अन्य ने कृषि, वाणिज्य एवं व्यापार के व्यवसाय अपनाये। क्षत्रियों के राज्यों के विध्वंस होने पर उनकी स्थिति में भी परिवर्तन हुए। हिन्दू अभिजात वर्ग में अब अनेक इकाईयाँ उत्पन्न हो गई जैसे कि स्वायत्त शासक, विभिन्न श्रेणियों के छोटे–मोटे अमीर इत्यादि। स्वायत्त शासकों के लिए पर्यायवादी शब्द जैसे राजा रावत जमींदार का प्रयोग होने लगा। स्वायत्त शासकों की कई श्रेणियाँ थी। प्रथम वे जिनके राज्य 13वीं शताब्दी से पूर्व थे, द्वितीय वे जिनके राज्य तुर्की सत्ता की स्थापना के बाद स्थापित हुए तथा तृतीय वे जिनके राज्य 14वीं शताब्दी में स्थापित हुए। इन स्वायत्त शासकों के अतिरिक्त अनेक ऐसे राना, रावत राय या जमींदार थे जिन्होनें कि भूमि को अपने अधिकार में लेकर भू–राजस्व वसूल करना प्रारम्भ किया तथा दिल्ली के सुल्तानों की अधीनता स्वीकार करके उनको वार्षिक कर व उपहार देना प्रारम्भ किया। 14वीं शताब्दी में तैमूर के आक्रमण के उपरांत उत्तरी भारत के अनेक प्रदेशों में नवीन हिन्दू स्वायत्त राज्यों की स्थापना हुई। इसी काल में हिन्दू जमींदार अत्यधिक शक्तिशाली हुए।[3]

शासित उपभोक्ता एवं उत्पादक तथा धर्म जाति व्यवसाय आदि पर भी विभाजित किया जा सकता है। हिन्दू शासक वर्ग में स्वतंत्र तथा अर्द्धस्वतंत्र स्वायत्त एवं अधीनस्थ हिन्दू राज्यों के हिन्दू शासक थे यद्यपि यदा–कदा उन्होनें दिल्ली व आगरा के सुल्तानों की अधीनता सैनिक दबाव में आकर स्वीकार कर ली परन्तु आन्तरिक मामलों में पूर्णतः वे स्वतंत्र रहे राजपूताना व उड़ीसा के हिन्दू शासकों की गणना इसी श्रेणी में होती है इसके अतिरिक्त विजयनगर साम्राज्य के हिन्दू शासक पूर्णतः स्वतंत्र रहे इसी शासक वर्ग में हिन्दू राज्यों के उच्च पदाधिकारियों की गणना की जा सकती है। यही नहीं स्वायत्त एवं मध्यस्थ हिन्दू जमींदार भी शासक वर्ग में आते थे।[4]

शासित वर्ग में कई वर्ग तथा उपवर्ग थे जैसे कि सर्वसाधारण उपभोक्ता तथा उत्पादक वर्ग सर्वप्रथम हिन्दू समाज में धार्मिक वर्ग का महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें ब्राह्मण, पुरोहित सन्त, सन्यासी तथायोगी थे। इसी वर्ग में आचार्य, धर्मशास्त्र की व्याख्या करने वाले तथा उपदेशक भी आते थे। हिन्दू समाज बहुधर्मी समाज था। यहाँ हिन्दू धर्म, बौद्ध व जैन धर्म तथा हिन्दू धर्म के अपने अनेक मतों जैसे कि शैव, वैष्णव इत्यादि के प्रवर्त्तक व प्रचारक उपस्थित थे। समाज आचार्यों, सन्तों, योगियों को श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखता था। हिन्दू समाज के द्वितीय वर्ग में कुलीन वंश के समृद्धशाली भूमिपति जमींदार,

जागीरदार इत्यादि थे। इसी प्रकार से तृतीय वर्ग में मध्य वर्ग था, जिसमें हिन्दू ज्योतिषी, विद्वान, साहित्यकार, टीकाकार, विधिवेत्ता, व्यापारी, अध्यापक, चिकित्सक, दूकानदार, सर्राफ, साहूकार, दलाल, वेतन पाने वाले राजकर्मचारी व अधिकारी तथा अनेक व्यवसायों में लोग थे। हिन्दू समाज के चतुर्थ वर्ग में शिल्पकार, वास्तुकार, जुलाहे, धुनियाँ, रंगरेज, नाई, बढ़ई इत्यादि व्यवसायिक जातियाँ थी। इसी वर्ग में साधारण सैनिक पदाती तथा कारवानी, बंजारे, कृषक इत्यादि आते थे। हिन्दू समाज के निम्न वर्ग में चर्मकार, डोम, कल्लाल, धोबी, चमार, भंगी निम्न कार्यों में लगे हुए व्यक्ति केवल भूमिहीन, कृषक, कृषकदास दासी, घरेलू नौकर–चाकर आदि रहे।[5]

मध्य काल में हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों में व्यवसायिक गतिशीलता उत्पन्न हुई। जो व्यवसाय अनेक जातियों के लिए वर्जित थे, उनमें वे जातियाँ प्रवेश करने लगी जिससे उनकी जाति बदल गयी। व्यवसाय में कुशलता के कारण भी नवीन जातियों की उत्पत्ति इस काल में हुई। नवीन उद्योग धन्धों के कारण भी अनेक, निम्न जातियों को ऊपर उठने का अवसर मिला। इस प्रकार हिन्दू समाज के आन्तरिक संगठन में निरन्तर परिवर्तन इस काल में होता रहा। हिन्दुओं के अभिजात वर्ग का रहन–सहन मुसलमान शासकों व अमीरों से मिलता–जुलता था। हिन्दू अभिजात वर्ग के सदस्य उसी प्रकार से शान–शौकत का जीवन व्यतीत किया करते थे। उनकी आय

के अनेक स्त्रोत थे जैसे कि भू–राजस्व में उनका हिस्सा, कर, उपकर, अभियानों द्वारा प्राप्त की गई सम्पत्ति, उपहार इत्यादि। यह सत्य है कि वे जंगलों में गढ़ियों में रहते थे किन्तु उनके पास भी विशाल प्रतिष्ठान, अन्तःपुर अनेक संख्या में सेवक–सेविकाएँ, रखैले, दास–दासियाँ हुआ करती थी। उनका रहन–सहन का स्तर उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार था। कुलीन वर्ग के उपरान्त धार्मिक वर्ग का स्थान था। वैष्णव, सन्तों, शैव मत के मठाधीशों, विभिन्न मतों तथा सम्प्रदायों के सन्तों को हिन्दू समाज आदर व श्रद्धा की दृष्टि से देखा करता था। धार्मिक व्यक्तियों का यह वर्ग बहुत ही संगठित, सशक्त प्रभावशाली तथा महत्वपूर्ण था क्योंकि अपनी पवित्रता, तार्किक शक्ति, ज्ञान सादे जीवन का रहन–सहन द्वारा वह समाज के विभिन्न वर्गों को न केवल रहस्यवाद एवं अध्यात्मवाद की ओर आकर्षित करता रहा वरन् उन्हें एकता, भातृत्व प्रेम, समन्वय की ओर आकर्षित करता रहा। उन्हें सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता रहा। इस वर्ग का रहन–सहन बहुत ही सादा था। शैव योगी लम्बे केश व जटा धारण करते थे। वे धूनी रमाते व नशीले पदार्थों का सेवन करते थे वे मुण्ड की माला पहनते थे, मटमैले पीले या जोगिया वस्त्र धारण करते थे। वैष्णव सन्त न्यूनतम वस्त्र ग्रहण करते थे, तथा पारिवारिक़ जीवन व्यतीत करते थे।[6]

समाज के निम्न वर्ग की स्थिति दयनीय थी। उनकी आय के स्त्रोत

कम थे। अलाउद्दीन खिलजी के समय भू–राजस्व की दर जब कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत कर दी गई तथा उनसे ग्रहकर व चराई कर लिये जाने लगे तो बड़े–बड़े कृषकों की दशा यह हो गई कि उनकी स्त्रियाँ नौकरी करने लगी। उपरोक्त स्थितियों के अतिरिक्त सामाजिक स्तर पर अनेकों भ्रष्टाचार के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार निम्न वर्ग के लिए सदैव वर्जित रहे। हिन्दू समाज में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था परन्तु वे सदैव आश्रित रहीं। बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति, वृद्धावस्था में पुत्र पर आश्रित रहती थीं। बाल विवाह एवं दहेज प्रथा प्रचलित थी। आज के वर्तमान समय में यह प्रथा अभिशाप मानी जाती है परन्तु मध्य काल में इन्हें कोई भी कुप्रथा की संज्ञा नहीं प्रदान करता था। इस काल में स्त्रियों की दशा बहुत ही शोचनीय रही। सल्तनत काल की भाँति सम्पूर्ण भारतीय समाज हिन्दू तथा मुसलमानों में मुगलकाल (1526–1707) में विभाजित था। यह विभाजन धर्म, जाति, मत, वर्ण के आधार पर तो था ही परन्तु व्यवसाय के आधार पर भी विभाजित था।[7]

सदियों से हिन्दू समाज जाति एवं वर्णाश्रम धर्म पर आश्रित था। रंग एवं जाति प्रथा में हिन्दू समाज पूरी तरह डूबा हुआ था जिसे एक अभिशाप कहा जायेगा। कर्म के आधार पर जाति प्रथा का जो संचालन प्राचीन काल से निर्धारित किया गया था उसका स्थान जाति–पाति, छुआ–छूत और

ऊँच–नीच ने ग्रहण कर लिया था।

इस काल में अनेक नवीन जातियों का सृजन भी हुआ जिसमें काजी, तेशखामी, आगा, गुजरात में मुंशी, कायस्थों में कानूनगो एवं रायजादा। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय, कृत्रिम वैश्यों तथा शूद्र वैश्यों का कार्य करने लगे। निम्न वर्ण के लोगों ने उच्च वर्ग के व्यवसाय को ग्रहण कर हिन्दू समाज में उथल–पुथल मचा दी। सच्चाई यह रही कि जो ढाँचा बाहरी रूप से वर्ण व्यवस्था का प्रदर्शन कर रहा था, आन्तरिक रूप से उसके विपरीत प्रतीत हुआ।

उच्च वर्ग के अन्तःपुर में सुन्दर महिलाएं व नृत्यांगनाएँ व उनकी पत्नियाँ व रखैलें, उनके मनोरंजन का मुख्य स्त्रोत हुआ करती थी। शिल्पकारों का उच्च वर्ग शोषण करते रहे। उनसे जबरदस्ती कार्य लिया जाता था व उन्हें नाममात्र का वेतन दिया जाता था। स्थानीय अधिकारी उनसे कठोरता पूर्वक व्यवहार करते थे।[8]

कृषकों का भी इस काल में बराबर शोषण होता रहा। कृषकों का कई स्तरों पर शोषण होता रहा। उन्हें न केवल भू–राजस्व ही देना पड़ता था वरन् उसके अतिरिक्त भूमि की नपाई के लिए व सर्वेक्षण के लिए शुल्क, सामन्त तथा मध्यस्थ जमींदारों को अनेक प्रकार के उपकर, जैसे नानकर, जलकर भवनकर, विवाहकर इत्यादि। विभिन्न अवसरों पर उपहार देना

पडता था। कृषकों का जीवन–स्तर कभी ऊपर उठने नहीं पाया। वह न तो भूमि को छोड़ सकता था और न भूमि उसको छोड़ सकती थी। उसके उत्पादन का लाभ उसे न पहंचकर अन्य वर्गों को पहुँचता था। इसी भाँति अन्य व्यवसायों में लगे हुए हिन्दुओं का जीवन स्तर सामान्य या निम्न–कोटि का था।[9]

मुगलकालीन हिन्दू समाज में स्त्रियों की दशा में तनिक भी सुधार न हुआ। मनु ने स्त्रियाँ को आश्रिता कहते हुए भी समाज में उच्च स्थान दिया। उसके अनुसार शैशवस्था तक बालिका अपने माता पिता, विवाह के उपरान्त अपने पति और वैधव्य होने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र या पुत्रों या देवर पर आश्रित होती थी। बाल विवाह पर बल दिया गया। जिसके कारण विधवाओं की संख्या बढ़ी। विधवाओं के लिए कठोर नियम बनाए गए। सामाजिक नियमों व परम्पराओं ने स्त्रियों में हीनता की भावना उत्पन्न कर दी। उनकी स्थिति दासियों की भाँति हो गयी। बालिका का जन्म परिवार में अशुभ समझा जाता था। उसके जन्म पर किसी प्रकार की खुशी नहीं मनाई जाती थी। उसके लिए संस्कारों की भी कोई औपचारिकता नहीं निभाई जाती थी। कन्या का जन्म, परिवार के लिए अभिशाप समझा जाता था। उसको घर ही में घरेलू कार्यों की शिक्षा दी जाती थी तथा दबाकर बन्धनों में रखा जाता था। बाल्यावस्था से उसमें यह भावना कूट–कूट कर भर दी जाती थी कि उसे

कुशल गृहणी बनना है तथा उसका संसार घर की चहारदीवारी के अन्दर है। राजा की प्रमुख पत्नी या रानी उसकी उपपत्नियां रखैलें, महिला सम्बन्धी तथा दासियाँ अन्तःपुर में निवास करती थीं। उन्हें जनानी ड्योढ़ी से बाहर पैर रखने की अनुमति न होती थी। अधिक विपन्नता, निम्न स्तर के जीवन शैली का परिचायक थी। शहर व ग्रामों में रहने वाली निम्न वर्गीय स्त्रियों का जीवन दयनीय व कष्टप्रद हुआ करता था क्योंकि उनकी आय के साधन सीमित थे और उन्हें निम्नोत्तर कार्य कर जीवनयापन करना पड़ता था। समुदायों में बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दाप्रथा, वेश्यागमन, दहेजप्रथा, बहुविवाह जैसी कुप्रथाएं एवं कुरीतियाँ व्याप्त थीं। इनके अतिरिक्त समाज के सभी वर्गों में मदिरापान, मादक वस्तुओं, भाँग, अफीम इत्यादि का प्रचलन था।[10]

मुगलकाल में हिन्दू समाज के समृद्धशाली वर्ग शान–शौकत का जीवन व्यतीत करने में विश्वास करते थे। यह काल भोगविलास का काल था। मदिरापान करना व वेश्यागमन दोनों ही बातें सभ्यता का चिन्ह समझी जाती थीं। उच्चकोटि की वेश्याएं या तो स्वयं अपने घरों में रहती थीं व अपने घरेलू कार्यो को देखती थीं या अपने परिवार में विवाहोत्सव तथा अन्य अवसरों पर गाती थीं। वे अन्यत्र नृत्य व गायन नहीं करती थीं। इसके विपरीत विशेष वेश्याएँ केवल राजा व अमीरों की महफिलों के अतिरिक्त अन्यत्र नृत्य व गायन नहीं करती थीं। तृतीय श्रेणी की वेश्यायें अपने कोठों पर अपने ग्राहकों

का मनोरंजन करती थीं। मनूची के अनुसार वे शहर में खुली जगत संध्या 6 बजे से 9 बजे रात्रि तक गायन व नृत्य मशाल व चिरागों की रोशनी में किया करती थीं व अत्यधिक धन कमा लेती थीं। दिल्ली में चावड़ी बाजार में उनके कोठे थे। प्रातः से लेकर रात्रि तक वहाँ उनके नुपूरों की झंकार सुनाई देती थी। हिन्दू परिवारों में पर्दा प्रथा विद्यमान थी। उच्च हिन्दू परिवारों में विशेष रूप से यह प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियों के मान–मर्यादा व सतीत्व की रक्षा के लिए पर्दा आवश्यक समझा जाता था। उत्तरी भारत में मध्यवर्गीय हिन्दू परिवारों में पर्दा–प्रथा का कठोरता से पालन किया जाता था। इस काल में विवा कर कर वसूल किया जाता था। विभिन्न श्रेणी के हिन्दू मंसबदारों को निम्नलिखित दर पर विवाह कर अपने पुत्र या पुत्री के विवाह पर देना पड़ता था।

1000 से 5000 के मंसबदार को 10 मोहर

900 से 100 के मंसबदार को 4 मोहर

80 से 20 के मंसबदार को 1 मोहन

अन्य लोगों को जो कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे, को 4 रूपया।

मध्य वर्ग के लोगों को 1 रूपया

साधारण लोगों को 1 रूपया

इस काल में हिन्दुओं में दहेज–प्रथा का चलन था। विदेशी यात्रियों ने

इस प्रथा का उल्लेख किया है। गरीबों को इससे बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। मुकुन्दराम तथा द्विज मंगल ने पान या दहेज प्रथा का उल्लेख किया है कनकन चन्दी हरिवंश में भी इस प्रथा का विवरण है। दहेज में भूमि, घोड़े, हाथी दासियाँ अत्यधिक मात्रा में सोना, चाँदी इत्यादि दिया जाता था। हिन्दुओं में बहु–विवाह की प्रथा थी। हिन्दू राजा व अमीर अपने अन्तःपुर में अनेक स्त्रियाँ रखते थे। वे इन स्त्रियों को अपने घर में न रखकर अन्यत्र महल या हवेली या किसी अन्य स्थल पर रखते थे। कालान्तर में विधवाओं को जबरदस्ती सती होने पर बाध्य किया जाने लगा। इब्नबतूता न इस सम्बन्ध में विवरण दिये हैं। तब से विधवाओं को बराबर सती होने पर विवश किया जात रहा। औरंगजेब ने अपने साम्राज्य में सती–प्रथा बन्द कर दी। यह सत्य है कि उसके राज्यकाल में अधिकारियों ने इस प्रथा को भरक रोकने का प्रयास किया परन्तु यदा–कदा सती के उदाहरण मिलते ही रहे। कभी–कभी सती होने वाली विधवाओं के सम्बन्धी सूबेदारों या अधिकारियों को बहुमूल्य उपहार देकर उनसे अनुमति प्राप्त कर लिया करते थे जो उनके भ्रष्ट आचरण की पुष्टि करता है।[11]

आठवीं शती के प्रथम दशक से इस्लामी संसार के विभिन्न देशों से मुसलमानों ने व्यापारियों आक्रमणकारियों तथा सैनिकों के रूप में जल–थल मार्गों से भारत के विभिन्न भागों में आना प्रारम्भ कर दिया था परन्तु

ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में अधिक संख्या में मुसलमान प्रवासियों ने इस देश में आकर बसना प्रारम्भ किया। तेरहवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक मुसलमान दार्शनिक साहित्यकार, प्रशासक, सैनिक व्यापारी इत्यादि प्रवासियों के रूप में निरन्तर यहाँ आकर बसते रहे और उनकी जनसंख्या में विविध कारणों से वृद्धि होती रही। विभिन्न सम्प्रदायों के सूफी सन्तों ने अनेक हिन्दुओं को इस्लाम की ओर आकर्षित कर उन्हें धर्म परिवर्तन करने के लिए प्रेरित कर उन्हें मुसलमान समाज में सम्मिलित किया यही नहीं अफगानिस्तान से अनेक कबायली जातियों का भारत में आगमन जारी रहा और वे जगह–जगह व्यवस्थापित हो गई। सोलहवीं शताब्दी के तृतीय दशक के प्रारम्भ में जब मुगल साम्राज्य की स्थापना हुई उस समय से लेकर 1707 ई0 तक मुसलमान संसार के विभिन्न देशों, अरब, ईरान, तूरान आदि से मुसलमान अपने परिवारों के साथ निरन्तर भारत आते रहे और जीविका उपार्जन के साधन प्राप्त कर मुसलमान अपनी जनसंख्या में वृद्धि करते रहे। वास्तव में मुगल साम्राज्य की 1526 में स्थापना से पूर्व न केवल मुसलमानों को इस देश में आये हुए लगभग 800 वर्ष से अधिक हो चुके थे वरन् उनका समाज पूर्णतः आन्तरिक व वाह्य परिवर्तनों के साथ विकसित हो चुका था। इस्लाम के अनुसार मुसलमानों में धार्मिक समानता थी परन्तु वे भी जाति–पाति, ऊँच–नीच के भेदभाव से कदापि मुक्त न रह सके। मुसलमान

समाज एक इकाई के रूप में था। उसमें किसी प्रकार का जातीय, सामुदायिक, धार्मिक अथवा भाषा के आधार पर भेद न था। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि मुसलमान समाज पूर्वतः प्रत्येक स्तर पर तथा प्रत्येक दृष्टि से विभाजित था। हूमायूँ अफीम का सेवन करता था। जहाँगीर मदिरा सेवी था। शाहजहाँ भी मदिरापान किया करता था। अतएव मादक वस्तुओं का प्रयोग करना परिवार में साधारण बात थी। निम्न वर्ग के आश्रित, निःसहाय मुसलमानों का भोजन बहुत ही सादा होता था। उनमें से अधिकांश खिचड़ी या रोटी पर ही निर्भर रहते थे। उच्च वर्ग में विलासिता और निम्न वर्ग में विपन्नता मध्य काल के समाज की यही सच्ची तस्वीर रही। समाज के निम्न वर्ग के मुसलमान महिलाओं की दशा दयनीय व चिन्ताजनक आर्थिक विषमताओं के कारण थी। ग्रामीण अंचलों की महिलाओं की दशा शहरी स्त्रियों की दशा की तुलना में अधिक कुण्ठायुक्त तथा कष्टप्रद थी। अनेक कुप्रथाएँ विद्यमान थीं। इस समाज में भी बाल–विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा थी। मुसलमान समाज में बहुविवाह की प्रथा महिलाओं के लिए वरदान व अभिशाप के रूप में थी।[12]

समय के साथ–साथ कुलीन वर्गों के सदस्यों की स्त्रियों के निवास स्थान को मुसलमान देशों में 'हरम' कहा जाने लगा। भारत में जहाँ शासकों की स्त्रियाँ रहती थीं उसे रनिवास या अन्तःपुर कहते थे। दिल्ली के सुल्तान बहुधा अपनी राजधानी में रहते थे। वहाँ वे अपना अधिक समय हरम में

व्यतीत किया करते थे। यहाँ उनके हरम का क्रमिक विकास हुआ। जैसे–जैसे सल्तनत सुदृढ़ होती गयी, वैसे–वैसे उनके जीवन में स्थायित्व आता गया। उनके जीवन का केन्द्र बिन्दु अन्तःपुर या हरम बन गया। यहॉ उनकी पत्नियाँ, परिवार की महिलाएं, माता, पुत्रियाँ, अन्य महिलाएं, रखैल और सेविकाएं निवास करती थी। हरम कितना बड़ा हो उसमें रहने वाली स्त्रियाँ, पत्नियाँ, रखैलें कितनी हो यह सुल्तान के पौरूष, पुरूषत्व, व्यक्तित्व, काम पिपासा, आर्थिक साधनों आदि अनेक बातों पर निर्भर थी। हरम में ही शासक, पुत्र–पुत्रियों व अन्य संतानों की शिक्षा–दीक्षा होती थी।[13]

हरम में केवल शासक एवं राजकुमार ही प्रवेश कर सकता था, किसी अन्य को प्रवेश होने की इजाजत नहीं थी। बिना शासक के पूर्व इजाजत के कोई अन्य महिला भी हरम में प्रवेश नहीं कर सकती थी, पुरूष का प्रवेश तो सख्त वर्जित था। दिल्ली के सुल्तानों ने हरम में प्रवेश के सख्त नियम लागू कर रखे थे, उनका उल्लंघन करना राजाज्ञा का उल्लंघन माना जाता था। हरम में महिलाओं की संख्या में सदा वृद्धि ही होती रहती थी। युद्ध से प्राप्त स्त्रियां, बाजार से खरीदी गयी स्त्रियां, उपहार में प्राप्त लड़कियाँ हरम में रखी जाती थी। पराजित सुल्तान या राजाओं की पत्नियां एवं रखैलें बन्दी बनाकर हरम में लायी जाती थी और सुल्तान उनके साथ मनमाने व्यवहार किया करता था। हरम में कभी स्त्रियों की कमी नहीं रहती थी। सुल्तान की

माँ हरम की पहली महिला होती थी। इसके बाद सुल्तान की प्रथम पत्नी का स्थान रहता था। कभी–कभी हरम की महिलाएं भी राजनीति में भाग लेने का प्रयास करती थी, अन्यथा वे सदा सुल्तान के हाथ में कठपुतलियों की तरह नाचती रहती थी। सुल्तान जब महल में आता तो वह उनकी काम पिपासा की तृप्ति करती थी और उनका मनोरंजन करती थी। शाह तुर्कान जैसी महिला ने हरम की अन्य रानियों के साथ दुर्व्यवहार किया, इल्तुतमिश के अन्य पुत्रों का बध करवाया, शेष को कारागार में डलवाया। तुगलक शासकों के समय तक भी हरम में सम्कालीन ग्रंथों से जानकारी मिलती है। इसके बाद के इतिहासकार इस संबंध में अपना मौन ही प्रकट करते हैं। सम्भवतः यह शासक के भय परिणाम रहा है। निम्न श्रेणी की महिलाओं को हरम में प्रवेश देकर उसे व्याभिचार व भ्रष्टाचार का केन्द्र बना दिया। यह स्थिति सुल्तान जलालुद्दीन फिरोजशाह खिलजी के सिंहासन पर बैठने तक बनी रही। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में अन्तिम चरण में हरम राजनीतिक षड्यन्त्रों का केन्द्र बन गया। अलाउद्दीन खिलजी की मृत्योपरान्त कुतुबुद्दीन मुबारक शाह खिलजी के गद्दी पर बैठते ही हरम पुनः विलासिता व व्यभिचार का केन्द्र बन गया। उसने बलपूर्वक खिज्रखान की पत्नी देवलरानी से विवाह किया तथा अलाउद्दीन की अनेक स्त्रियों को अपना बना लिया। वह सदैव व्यभिचार में डूबा रहता था। उसके वध के उपरान्त खुसरो खाँ ने गद्दी

पर बैठते ही देवल रानी से शरियत के नियम के विरूद्ध विवाह किया व हरम में अनेक अत्याचार किये।[14]

हुमायूँ के जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष संघर्षमय होने के कारण हरम की महिलाओं का जीवन भी कष्टप्रद ही रहा। यह सत्य है कि हरम में स्त्रियों की सुख सुविधा के लिए सभी उपचार थे। स्त्री रोगियों के लिए बीमार खाना था। विधवाओं का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। सम्राट की पत्नियों व राजकुमारी, राजमाता के अनेक अधिकार थे। परन्तु इन सब बातों के बावजूद भी कई विशेष बातें मुख्य रूप से ध्यान दिए जाने के योग्य हैं। प्रथम, यह कि अधिकांश राजकुमारियों का विवाह नहीं होता था। हरम के नियमों के अन्तर्गत उनसे सम्पूर्ण जीवन संयम से व्यतीत करने की आशा की जाती थी। विवाह का सुख इन राजकुमारियों में से कुछ ही को मिला। शेष या तो शराब के नशे में डूबी रहीं या अन्य शिशुओं का पालन पोषण करती रहीं या हरम की व्यवस्था में रुचि लेकर अपना जीवन व्यतीत करती रहीं। यदि कुछ विदेशी पर्यटकों ने कुछ राजकुमारियों के चरित्र पर टीका टिप्पणी की है, तो इसमें भी सच्चाई दृष्टिगत होती है। अकबर जब गद्दी पर बैठा तो उसके हरम की अधिकांश महिलाएं काबुल में थी। जब वे हिन्दुस्तान आयीं तभी अकबर का पारिवारिक जीवन शुरू हुआ। जैसे–जैसे अकबर को सफलता मिली वैसे ही उसका व्यक्तिगत जीवन भी स्थिर होता चला गया। अकबर के हरम में

पहले से ही हुमायूँ व बाबर के हरम की स्त्रियाँ व रखैलें थी। परन्तु अकबर ने दिन प्रतिदिन अपने हरम में स्त्रियों की संख्या में वृद्धि ही की। हिन्दू, मुसलमान, अमीरों तथा स्वतंत्र राज्यों के शासकों से अनेक वैवाहिक संबंध स्थापित किए। अकबर एक विशाल हरम की स्थापना के पक्ष में था। उसके काल में उसके पत्नियों व रखैलों की संख्या की मात्रा सर्वाधिक रही। उसने उल्माओं से पूछा कि कितने विवाह सम्राट कर सकता है। उन्होनें उत्तर दिया कि सुन्नत के अनुसार केवल चार विवाह ही वैध हैं। अकबर उनके उत्तर से संतुष्ट नहीं हुआ और न ही सुन्नत की परवाह की। क्योंकि युवावस्था में उसने अनेकों विवाह कर रखे थे। वह बहुविवाह के पक्ष में था। उसके बहुविवाह के कारण अनेक जातीय तत्वों ने हरम में प्रवेश किया। हरम में ईरानी, तूरानी, अरबी, राजपूत, कश्मीरी, उज्बेकी, अफ़गान तथा अन्य कई जातियों की स्त्रियाँ थी। अपने पिता हुमायूँ की तुलना में जिसने आठ विवाह किए थे, अकबर ने 21 विवाह किए। इसके अतिरिक्त उसने अनेक अवैध विवाह किए व अनगिनत रखैलें रखी। सम्राट अपनी काम पिपासा की तृप्ति के लिए जितनी चाहे स्त्रियां रख सकता था, संख्या की कोई सीमा निश्चित नहीं थी। जहाँगीर ने 27 विवाह किए। हाकिंस के मुताबिक उसकी 300 पत्नियाँ थी। उसके पुत्र शाहजहाँ ने 6 विवाह किए, मात्र औरंगजेब ने चार विवाह किए थे। इन विवाहों से हरम की संख्या पर तो अंतर पड़ता ही था,

अनेक संतानों की उत्पत्ति से भारी भरकम संख्या सदा हरम में बनी रहती थी और राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु भी हरम को माना जाता रहा है।[15]

किसी भी पुरूष को हरम में प्रवेश करने की इजाजत नहीं थी। कुछ विदेशी पर्यटक को यदि अन्दर ले जाने का अवसर भी मिला तो उनके आँखों में पट्‌टी बांधकर ले जाया गया। उसको ले जाने का उद्देश्य मात्र महिला रोगी का ईलाज कराना था। उसे उसी प्रकार हरम से बाहर आँख में पट्‌टी बांधकर लाया जाता था। हरम के भीतर के महिलाओं की स्थिति कूप मंडूक रही। कुछ एक अवसरों पर ही कुछ चुनी हुई महिलाओं को सौभाग्य से ही बाहर जाने का अवसर प्राप्त हुआ होगा और वह भी पर्दा, डोली के सहारे। सांसारिक भोग की प्रबल इच्छा पूर्ण न होने से ही हम हरम की अविवाहित लड़कियों की मानसिकता का अनुमान लगा सकते हैं। दूसरे, हरम के अन्दर हिजड़ों व महिला कर्मचारियों की दृष्टि प्रत्येक महिला की गतिविधियों पर नज़र रखना व बाहर से चौबीसों घण्टों राजपूतों की पहरेदारी से सभी स्त्रियाँ अवगत थीं। हरम के अन्दर ही उनका संसार था। जो महिलाएँ हिन्दू घरानों या स्वतंत्र शासकों के घरों में विवाहित होकर आई उन्होनें लौटकर मायके का मुंह जीवन भर न देखा। वे सगे सम्बन्धियों भाई, बहनों, माता, पिता से सदैव के लिए पृथक् हो जाती थीं। क्या उनके लिए भव्य महल बन्दीगृह के

समान न थे? सभी स्त्रियों को सम्राट के साथ उठने, बैठने और सपाटे पर जाने या उसके साथ भोग विलास में डूबे रहने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता था। उनकी दशा और भी शोचनीय रही होगी। वहाँ की कुलटा, अहंकारी, दम्भी व स्वार्थी महिलाएं हरम के वातावरण को अपवित्र बना दिया करती थीं। इल्तुतमिश के समय शाह तुर्कान, कैकुबाद के समय उसकी रखैलें, मुगलकाल में सम्राट जहाँदारशाह के समय लाल कुँवर, कतिपय ऐसी स्त्रियाँ निम्न परिवारों की थीं जिन्होनें अपने आचार विचार, व्यवहार से 'हरम' की गरिमा समाप्त कर दी।[16]

हरम एक महत्वपूर्ण संस्था थी जहाँ मुगल राजकुमारों एवं राजकुमारियों का पालन–पोषण हुआ करता था। एक अपना निजी प्रशासन हरम के अन्दर कार्यरत था जिसका संचालन महिलाओं के द्वारा होता था। द्वार पर हिंजड़ों का पहरा रहता था। बाहर सैनिकों का सख्त पहरा रहता था। हरम में किसी भी प्रकार का राजकुमारों द्वारा नियम उल्लंघन करने पर उन्हें कठोर या उचित दण्ड दिया जाता था। सम्भवतः ऐसा हरम की गरिमा और गोपनीयता को कायम रखने के लिए किया गया।

सन्दर्भ -

1. ए0 रशीद – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, पृ0 98–99
2. आर0सी0 मजूमदार – एन एडवान्स हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 207–212
3. पुरी, दास, चोपड़ा – भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृ0 142–148
4. वही, पृ0 182–188
5. डॉ0 यूसुफ हुसैन – मध्यकालीन भारतीय संस्कृति की झलक, पृ0 88–90
6. ईश्वरी प्रसाद – मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0 137–142
7. एस0आर0 शर्मा – भारत के मुस्लिम शासन का इतिहास, पृ0 94–98
8. इलियट एण्ड डाउनसन – भारत का इतिहास, पृ0 147–150
9. मोरलैण्ड, डब्लू0एच0 – द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, पृ0 59–64
10. वही, पृ0 67–70
11. के0एम0 अशरफ – लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ प्युपिल ऑफ इण्डिया, पृ0 87–92
12. पी0एन0 चोपड़ा – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मुग़ल एज, पृ0 195–198
13. वही, पृ0 207–212
14. इलियट एण्ड डाउन्सन – भारत का इतिहास, पृ0 190–198
15. मजुमदार, राय, चौधरी – मध्यकालीन भारत, पृ0 80–87
16. वही, 105–109

चतुर्थ अध्याय

मध्यकाल में आर्थिक भ्रष्टाचार

जहाँ तक मध्यकाल में आर्थिक भ्रष्टाचार का प्रश्न है, इस संदर्भ में समकालीन ऐतिहासिक ग्रंथों ताज–उल–मआसिर, तबकाते नासिरी, इब्नबतूता की किताब उल–रेहला आदि में यत्र–तत्र उदाहरण मिलते हैं।

इब्नबतूता ने लिखा है कि सुल्तान का आदेश हो जाने के उपरान्त भी किसी व्यक्ति को उस समय तक धन का भुगतान सुगमतापूर्वक न होता था जब तक वह विशेषप्रयत्न न करे। (ऐनामुलमुल्क) के पत्रों में इसकी पुष्टि होती है। उसने घूस का तो उल्लेख नहीं किया है जिसको देने के लिये इब्नबतूता ने कहा था, किन्तु पत्रों से पता चलता है कि उसे देहली के अधिकारियों को किस प्रकार प्रभावित करना पड़ता था। इन पत्रों द्वारा तत्कालीन अधिकारियों के पारम्परिक सम्बन्धों के ऊपर भी प्रभाव पड़ता है।

ऐनामुलमुल्क ने 'इन्शा–ऐ माहरू' नामक पुस्तक में लिखा है कि जब संसार के स्वामी ने विजयी सेना लेकर मक्का से प्रस्थान किया तो उसे मार्ग में सूचना मिली कि अहमद अयाज ने देहली में विद्रोह कर दिया है। लोगों को धोखा देने के लिये छ–सात वर्ष के एक विजन्मे बालक को सुल्तान मोहम्मद का पुत्र प्रसिद्ध करके उस अधम को कठपुतली की भांति सिंहासनारूढ़ कर दिया है। शहर (देहली) के निवासी बड़े कष्ट में हैं केवल कुछ ही दिन के लिये अपने तथा

अपने कुटुम्ब के प्राण संकट मे डाल लिये।[1]

बरनी ने लिखा है कि हश्म (सेना) तथा प्रजा के विषय में जो जहांदारी (राज्य व्यवस्था) के दो बाहू है। सुल्तान फिरोज शाह के राज्य काल में मैं तथा अन्य लोग जो कुछ देख रहे हैं वह कई करणां (करन–दस बीस तीस चहां तक कि 120 वर्ष तक की कोई अवधि) से देहली के बादशाहो के समय में नहीं देखा गया। किसी को भी इस बात की स्मृति नही है कि हश्म में सुविधापूर्वक प्रविष्ट होने के लिये हुल्या (सैनिकों का पूर्ण विवरण) जो हश्म में प्रविष्ट होने के लिये बड़ा ही कष्टदायक है क्षमा हुआ हो। हश्म जिन्हें वेतन के स्थान पर ग्राम प्राप्ति है अपने दास सेवक तथा सम्बन्धी अर्ज (सेना का निरीक्षण तथा नयी भारती) के समय प्रस्तुत कर देते हैं और उनका वेतन स्वयं ले लेते हें जो सुख सम्पन्नता सन्तोष तथा विलासमय जीवन उन्हें प्राप्त है वह सभी को ज्ञात है जो कुछ हश्म को इतलाक में प्राप्त होता है, यद्यपि वह किश्तवार कभी नकद कभी पत्रों के रूप में प्राप्त होता है किन्तु बादशाह उनके विषय में शिकारी (बिना परिश्रमिक के कोई कार्य) का आदेश नहीं देता। दण्ड का नाम भी किसी की वाणी पर नहीं आता बहुत सी ऐसी सुविधायें पैदा कर दी गयी है कि बहुतों को अपने घर बैठे वेतन प्राप्त हो जाता है यदि इतला कियों के वेतन में से अमीर तथा नवी सिन्दे (कार्णिक मुंशी) लालच करते हैं तो कुछ ले लेते हैं। गबन कर लेते हैं तो उसे बादशाह की ओर से शाही खर्च में लिख लिया जाता है और वह रकम उसे प्रदान कर दी जाती

है और अमीनों के हिसाब के समय पर रकम को मुजरा कर दिया जाता है। इस बीच में जब से बादशाह सत्तारूढ़ हुआ है हश्म किसी ऐसे युद्ध के लिये नहीं भेजी गयी जहां उसे कोई कठिनाई या कष्ट हो। वह किसी ऐसे स्थान पर भी नहीं भेजी गयी जहां से वर्ष दो वर्ष पश्चात लौट आती। यह आश्रय तथा अनुकम्पा यदि लोग इसका मूल्य तथा महत्व जाने अथवा पहिचाने तो साधारण नहीं। दुकानदारों, व्यापारियों काफिले वालों साहों (साहुकारों) सर्राफों, ऋणदाताओं तथा मुहूर्तकिरान (अनाज को छिपाकर एकत्र करने वाले तथा बाद में अधिक मूल्य पर बेचने वाले, चोर बाजारी करने वाले की धन सम्पत्ति माल तथा नकद लाखों को पार करके करोड़ों तक पहुंच गया है। खुतों, मुकद्दमों के घरों में घोड़ों, मवेशियों, अनाज तथा सामान के कारण स्थान शेष नहीं और प्रजा के यहां कमी का नाम नही है प्रत्येक अपनी श्रेणी के अनुसार धनी तथा समृद्धशाली हो गया है। जिन बादशाहों की मुझे स्मृति है उनके दीवाने बिजारत में मैंने कभी ऐसा न देखा कि मुशरिफ (प्रान्तों तथा अक्ताओं से प्राप्त हिसाब किताब की जांच मुशरिफ द्वारा होती थी। अमिल) वह पदाधिकारी जो साधारणतः ग्रामों में भूमि कर वसूल करता था ग्रामों में उसका तथा मुतसरिर्फ का एक ही कर्तव्य होता था (मुवाजा) प्रत्येक प्रान्त में व जीर की सिफारिश पर एक ख्वाजा अथवा साहिबे दीवान नियुक्त होता था वह प्रान्त का हिसाब किताब रखता था। और केन्द्र में भेजता था। अक्ताओं में वह मुक्ता का अधीन होता था तथा केन्द्र से नियुक्त होने के कारण उसे विशेष प्रकार

के अधिकार प्राप्त थे। पदाधिकारी तथा नवीसिन्दे कुछ अमीरों तथा वालियों से हिसाब की कड़ी जांच न कर रहे हों उन्हें बन्दी बनाकर अपमानित तथा क्षुद्र न किया जा रहा हो जिनके विषय में भी दीवान–ए–जिरात में धन की जांच की जाती अथवा हिसाब किताब में खूब घूस देते थे। सुल्तान फिरोज शाह ने पारा के विरुद्ध करों का अन्त करा दिया और जो कर शरा के अनुकूल थे उनमें भी कमी कर दी। दीवान के मुतालबों में दीवान के महमूल को छोड़कर पिछले करो में से टंके में दो जीतल ही लेने का नियम रहने दिया। यदि कोई कारकूनों अथवा कर्मचारी उससे अधिक लेता तो कड़ी पूछताछ की जाती यदि कारखो के लिये कोई सामान अथवा वस्तु मोल ली जाती तो प्रचलित भाव एवं न्याययुक्त दाम देकर माल ली जाती। बाजार के छोटे बड़े सभी प्रसन्न थे। जहां कहीं कोई उत्तम वस्तु अथवा सामान होता तो लोग उसे कारखानों के लिये एकत्र कर लेते। कारण कि भाव न्याय पर आधारित होता और मूल्य एक मुश्त अदा कर दिया जाता था अतः लोगों को बड़ा लाभ होता था। सुल्तान फिरोज शाह ने ईश्वर का अत्यधिक भय रखने के कारण, राज्य के पदाधिकारियों को चेतावनी दे दी थी कि किसी पर किसी लोभ के कारण कोई अत्याचार न हो इस चेतावनी के कारण प्रजा समृद्ध हो गयी यहां तक कि प्रत्येक अक्ता परगने तथा कोठा पर चार ग्राम बस गये। प्रजा के घरों में इतनी सम्पत्ति अनाज धन एवं घोड़े एकत्र हो गये जिनका उल्लेख सम्भव नहीं। सुल्तान की राय ने खुदाबन्दजादा के षड़यंत्र रचने पर उसे

एकान्तवास में चले जाने का आदेश दिया और उसकी वृत्ति निश्चित कर दी खुदाबन्द जादा के पास अत्यधिक धन सम्पत्ति थी खुसरो मलिक ने उस धन से षड़यंत्र रचना चाहा था। अतः वह सब धन राजकोष में दाखिल कर लिया गया और खुसरो मलिक को देश से निकाला दे दिया गया। सैयदों, काजियों, फकीरों तथा प्रतिष्ठित लोगों के पिता अपनी पुत्रियों का सुल्तान के चरणों के आशीर्वाद से अल्पावस्था में ही विवाह कर देते थे और उनके पति को दे देते थे इसलिये उनके पिताओं को बहुत सामग्री प्राप्त होती थी और जिसे न प्राप्त होती थी उसे अपनी पुत्रियों के विवाह के लिये राजकोष से धन प्राप्त होता था। इसी प्रकार मुसलमानों के छोटे–छोटे पुत्र निश्चित होकर सांसारिक लाभार्थ धार्मिक शिक्षा प्राप्त किया करते थे। दसतरूल वुजरा में लिखा है कि प्रत्येक आमिल जो टाल–मटोल करके धन भूमि में गाड़ देते हैं उसे योग्य वजीर उसकी आखों में अंगुली डालकर निकाल लेता है। सुल्तान फिरोज शाह के सिंहासन रोहण के समय शागानी मुद्रा की टकसाल करजशाह के अधीन थी। वह पदाधिकारी इस कार्य को बड़े प्रयत्न से किया करता था। कई लाख तनके की शगानी मुद्रायें सुल्तान के राज्य काल में कजर शाह के अधीन बनी थी। दो योग्य गोयेन्द्रे गान (गुप्तचर) बादशाही कानून के अनुसार समाचार पहुंचाया करते थें उन्हें सूचना दी कि शागनी मुद्रा में शाही अधिकारी एक हब्बा (दाना) चांदी कम कर लेते है यदि परीक्षा की जाये तो इसका तथ्य ज्ञात हो जायेगा और उन पदाधिकारियों तथा

कर्मचारियों को जो कुछ होना होगा वह होगा। सुल्तान फिरोज शाह ने इसकी जांच गुप्त रूप से प्रसिद्ध वजीर के अधीन कर दी। उन दिनों खाने जहां मकबूल जीवित था। उसका निधन 772 हिजरी 1370–71 ई0) में हुआ। उसने राजनीति के भेदों का इस प्रकार उल्लेख किया। "सुल्तानों की मुद्रा धरती पर कुमारी कन्या के समान होती है। यदि कुमारी कन्या सच या झूठ कहीं कुख्यात हो जाये और उस पर कोई दोष लग जाये तो वह अत्यधिक रूपवती एवं योग्य होने पर भी पूछी जायेगी। इसी प्रकार धर्म के आकांक्षी सुल्तानों की मुद्राओं को ईश्वर न चाहे कोई झूठ अथवा सच किसी लोभ से कम बताने लगे तो बादशाही मुद्रा कुख्यात हो जायेगी। संसार में ऐसे लोगों तथा देशों में खुल्लम खुल्ला खराबी उत्पन्न हो जायेगी। इस प्रकार मुद्रा कुख्यात हो जायेगी और कोई उसे हाथ न लगायेगा। यह सुनकर सुल्तान ने कहा कि इस बात की जांच के लिये क्या उपाय किया जाये। "प्रसिद्ध वजीर ने गूढ़ समस्याओं पर भी सोच विचार करके राजनीति का रहस्य इस प्रकार खोला, " इस कार्य में सन्देह करना तथा इसकी जांच करना बहुत बड़ी भूल है।" इस प्रकार सुल्तान ने कहा, "इस रहस्य का तो पता चलना ही चाहिये जिससे मेरे सन्देह का अन्त हो सके। वजीर ने कहा "गोयन्दो (गुप्तचरों) को बन्दी बना लिया जाये और इस कार्य को आवश्यक सावधानी तथा सतर्कता के कारण एकान्त में करायी जाये।" इस कारण उन दोनों गुप्तचरों को बन्दी बना लिया गया और उन्हें दीवान–ए–विजारत के बन्दीगृह में रखा गया।

यह निश्चित हुआ कि जांच दूसरे दिन होगी। जब खानेजहां लौट गया बादशाह एकान्त में चला गया। वजीर ने गुप्तचर के कजर शाह को बुलाया। जब वह उपस्थित हुआ तो खानेजहां ने कहना प्रारम्भ किया "हीन आमिलों के हृदय में धन का आपार लोभ होता है। इस कारण वे परिणाम पर ध्यान दिये बिना मुद्रा तराशते है। संसार का यह नियम है कि कारकुन अत्यधिक प्रयत्न किया करते हैं। यह बात नहीं कि यह कार्य तुमने किया है जाकर अपने कारकुनों से जांच करो। यदि ऐसा ही हो जैसा गुप्तचर कहते हैं तो मैं ऐसा उपाय करूं कि इस शतरंज के मैदान को फजी से जीतू जिससे शाशगनी मुद्रा समस्त संसार में प्रसिद्ध हो जायेगी। जब दोषी कजरशाह वजीर के पास से लौटा तो उसने अपने कारकुनों के पास पहुंच कर इस विषय में जांच की तो ज्ञात हुआ कि शशगनी मुद्रा में एक दाना चांदी कम होती है कजर शाह ने वजीर को जाकर सच–सच हाल बता दिया। इस पर वजीर ने कहा कि इस अफवाह की जांच के लिये एकान्त में सुनारों को बुलवाया जायेगा, जाकर उन्हें मिलाओ, वह इस बात को सुनकर सुनारों के पास पहुंचा और उनसे कुछ उपाय करने को कहा। उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम लोगों को शाहंशाह के समक्ष नंगा करके तहमत तथा इकहरा वस्त्र बंधवा दिया जायेगा और फिर जांच करायी जायेगी। यदि किसी प्रकार कुछ दाने चांदी हमारे पास उस स्थान पर पहुंच जाये तो हम उसे घरिये में डाल देंगें । कजरशाह ने कोयला बेचने वालों को भी मिलाया। उन लोगों ने प्रयत्न करके

एक–एक कोयले के बीच से खाली करके उसमें कुछ चांदी के दाने डाल दिये और कोयले का मुंह मोम से बन्द कर दिया। दूसरे दिन बादशाह वजी के साथ एकान्त में बैठ गया। उस समय सुल्तान पलंग पर आसीन था। खाने जहां वजीर जामा खाने पर आराम कर रहा था। कजर शाह को गुप्तचरों के साथ प्रस्तुत किया गया। सुनारों को नंगा करके तहमत बंधवा दिया गया। कोयला बेचने वालों ने सुनारों के समक्ष कोयला लाकर ढेर कर दिया। सुनारों से सुल्तान के आदेशानुसार कुछ शशगानिया लेकर घरिये में डाल दिया उन्हें आग पर रखा गया आग जलने लगी। बादशाह हितैषी वजीर से वार्ता करने लगा। कभी–कभी राज्य सम्बन्धी गोपनीय वार्ता करने लगा। कभी कभी राज्य सम्बन्धी गोपनीय वार्ता भी होती जाती थी। सुनारों ने आग जलाने के बीच में कोयले में से उन चांदी के दानों को धीरे से घरिये में डाल दिया। जब घरिया आग पर से निकाल कर ठण्डी हो गयी और राज सिंहासन के समक्ष उसे तौला गया तो शाशगानी मुदी में पिछली तौल के अनुसार ठीक निकली और गुप्तचर झूठे हो गये। सुल्तान के कजर शाह को खिलउत प्रदान की। इस अवसर पर वजीर ने निवेदन किया कि क्योंकि शाही मुदा इन गुप्तचरों की सूचना से परीक्षा पर ठीक निकली अतः शहंशाह कजर शाह को हाथी की पीठ पर बैठाकर घुमाये जाने का आदेश प्रदान करें जिससे संसार वाले जान जायें कि शाही शशगानी मुद्रा खरी है। इसमें कोई हानि नहीं है। इस प्रकार बादशाह के अनुसार कजर शाह को हाथी पर सवार कर श्हर में घुमाया

गया और वे गुप्तचर झूठे बन गये। बादशाह ने उस दूसरे स्थान पर भिजवा दिया किन्तु कुछ समय उपरान्त हितैषी वजीर ने कजरशाह को किसी दूसरे बहाने से पदच्युत कर दिया। निःसन्देह यदि इस प्रकार के बुद्धिमान वजीर न हों तो देश के कार्य तथा शासन प्रबन्ध में बड़ी कठिनाई हो। देहली के गायकों ने यह कार्य प्रारम्भ कि वे अपने अल्पावस्था के पुत्रों को लेकर देहली से फिरोजाबाद आ जाते थे। यहां तक कि जिसके चार वर्ष अथवा पाच वर्ष का भी कोई पुत्र होता तो वह उसे अपने साथ फिरोजाबाद लाता था। इसलिये कि सुल्तान की ओर से जो इनाम प्राप्त होता था वह सब व्यक्तियों में बांटा जाता था। एक बार दरबार के कारखानों तथा आमिलों ने इनमें भेदभाव करना चाहा तब सुल्तान को इस बात का पता चला तो उसने उनकी ओर कठोरतापूर्वक दृष्टिपात करते हुये कहा कि बेचारे फकीर सात दिन तक परेशानी में पड़े हुये प्रतीक्षा किया करते कि अब शुक्रवार आये और कब हमको कुछ प्राप्त हो। इस आशा से वे अपने पुत्रों को 5 कोस से देहली से फिरोजाबाद लाते हैं। यदि इनमें भेदभाव किया गया तो इनकी क्या दशा हो जायेगी। शहंशाह ने आदेश दे दिया कि प्रत्येक को एक–एक करके इनाम दिया जाय। भेदभाव करने की आवश्यकता नहीं। उस समय सरांय अदल में जो सामान आता और उस पर निसाब (वह निर्धारित सम्पत्ति जिस पर जकात) कर वसूल किया जाता है। उनके अनुसार तथा निसाब के अतिरिक्त जो जकात होता था वह ले लिया जाता। उसे पुनः तौला जाता और वह समस्त सामान

खजाने में लाया जाता। उसे पुनः तौला जाता और तनके में एक दांग लिया जाता था। इस साधन से बड़ा धन एकत्र हो जाता था। दानगाना के खजाने में व्यापारियों को बड़ा कष्ट होता था इसलिये कि उस दांग के वसूल करने तथा सावधानी के हित में कारकुन व्यापारियों पर बड़ी निष्ठुरता करते थे और प्रायः बहुत सी बातें टालते रहते थे। इससे व्यापारियों को बड़ा कष्ट होता था। उन दिनों सभी खास व आम व्यापारी अनाज नामक मिश्री चीनी तथा अन्य सामग्री बडे प्रयत्न से चौपायों पर लाद कर शहर (देहली) लाते थे। दीवान के आदमी उन चौपायों को जबरदस्ती पकड़ लेते थे और पुरानी देहली में ले जाते थे। पुरानी देहली में सात बादशाहों के बनवाये हुये सात कोट थे। वे सब पुराने हो गये थे। वह गिरी पड़ी पुरानी ईंटे बहुत बड़ी संख्या में थी। दीवान के कमचारी व्यापारियों तथा उनके चौपायों को वहां ले जाते थे और उनसे एक बार ईंट लदवाकर शहर फिरोजाबाद में खोर के लिये पहुंचवाते थे। इस अत्याचार के कारण व्यापारी शहर देहली में आने से बचते थे। देहली में अनाज तथा नमक का भाव बढ़ने लगा। सुल्तान के समक्ष सब बातें विस्तार से कही गयी अपितु यहां तक कहा गया कि एक व्यापारी तीन मन रूई लाया था। खाजीन-ए-दानगाना के अधिकारी उसे वहां ले गये और उसे बिना कुछ निश्चित किये रखे रहे। न उससे तीन दाग लेते थे और न उसे छोड़ते थे वह कुछ दिनों तक उसी दशा में पड़ा रहा और उसकी रूई में आग लग गयी और वह जल गयी। वह चला गया। यदि किसी आमिल

तथा कारकुन द्वारा किसी लोभवश किसी अपराध अथवा धन अपहरण का पता चलता तो उसको उस कारण राज सिंहासन के समक्ष प्रस्तुत किया जाता। खाने जहां जो संसार भर में सबसे अधिक बुद्धिमान था शासन तथा धन सम्बन्धी समस्यओं के समाधान में बड़ा प्रयत्नशील रहता था। सुल्तान का क्रोध शान्त करता था। इसलिये इस इतिहास कार को विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ कि वह सुल्तान के फर्राशखाने में एक जड़ाऊ जूता उस कारखाने के अधिकारियों को सौंपा गया था उसका मूल्य 80,000/– रुपया तनके था। संयोग से कारकून आपस में संगठित हुआ और उन्होंने लखासौती के उपहारों में उसे दिखाकर आपस में बांट लिया। कुछ समय उपरान्त सुल्तान को उसकी याद आयी। कर्मचारियों ने जो असावधान लोगों में सम्मिलित होते हैं निवेदन किया कि उसे लखनौती के उपहारों में भेज दिया गया था। सुल्तान फिरोजशाह को सन्देह हुआ कि इन कारकुमों ने जूता नष्ट कर दिया। उसने उनका कथन स्वीकार नहीं किया। उसने उन्हें दण्ड देना निश्चित किया। वजीर उस समय उपस्थित था और सब कुछ देख रहा था। उसने बादशाह का क्रोध देखकर सोचा कि शहंशाह इन कारकुनों को सात मार्गों पर चलता कर देगा। वह सुल्तान के समक्ष खड़ा हो गया। और उन अधिकारियों की आसतीन पकड़ कर बड़ी कठोरता से उन्हें हटा दिया। जब से बादशाह के सामने से हाजिबों क़े निकट पहुंचे तो उसने उन असावधान आमिलों से कहा कि हे मृत्यु के निकट पहुंचे तुम्हारे प्राण बचा दिये

जूते का मूल्य 80,000/– तनका खजाने में पहुंचा दो। दूसरे दिन बादशाह ने वजीर से पूछा कि जूते वाले कारकुनों का क्या हुआ तो वजीर ने कहा कि 80,000/– तनके जूते का मूल्य शहंशाह के खजाने में पहुंच गया। चाहे जूता उपहार में लखनौती गया हो अथवा न गया हो। मलिक शम्शुद्दीन के दीवान ए विजारत में स्थान प्राप्त हो गया। भाग्यवश सुल्तान फिरोजशाह के हृदय में आ गया कि दीवान ए विजारत के पदाधिकारी अपने कार्य में कमी करते हैं और उसके शुभ चिन्तक नहीं रहे हैं। उसने सोचा यदि मैं शम्सुद्दीन अबू रिजा को जो बुद्धिमत्ता एवं योग्यता में अद्वितीय है। उसे दीवाने विजारत में नियुक्त कर दूं तो उसके सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व के कारण अनेक कठिनाइयां उठ खड़ी हो जायेंगी और राज्य में उथल पुथल में जायेगी। जब सुल्तान फिरोज के हृदय में दीवाने विजारत के अधिकारियों की ओर से शंका उत्पन्न हो गयी तो उसने बैतुल माल के कार्यों की बागडोर मलिक शम्शुद्दीन के हाथों में दे दी।[2]

राज्य के व्यय जो राज्य के लोगों पर होता है सावधानी से कार्य करें। उसे जमा व बाकी से कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु मलिक शम्शुद्दीन अबू रिजा ने शहंशाह के अत्यधिक विश्वासपात्र होने के कारण वजीर नायब वजीर मुशरिफ मुस्तौफी मजमुआदार वरीद नाजिस वुकूफ सभी अपने अधिकार में कर लिये थे। सभी लोगों ने काम से हाथ खींच लिया था। मलिक शम्शुद्दीन ने सांसारिक वैभव के कारण राज्य के सभी अधिकारियों की चिन्ता त्याग दी। शहंशाह का विश्वास

प्राप्त हो जाने के कारण उसने समस्त राज्य को विस्मृत कर दिया। सुल्तान के समस्त विश्वासपात्रों के हृदय में शत्रुता उत्पन्न करा दी तथा घूस लेने के प्रयत्न करने लगा। सुल्तान फिरोज को भी सभी राज्य वालों की ओर से संशोधित करा दिया और प्रजा को विरोधी बना लिया। दरवेशों का सेवक ऐने माहरू निवेदन करता है कि मौलाना हाजी बिहारी ने ख्वाजा हुसामुद्दीन जुनैदी के पत्र में लिखा है कि जब उच्छ के कारकुनों को किसी कार्य की आवश्यकता होती है तो वे वेगार कराते हैं और अपशब्द कहते हैं यदि उन्हें धन की आवश्यकता होती तो वे लोगों को अंधेरी और तंग कोठरी में बन्दी बना लेते और तत्काल 2000 तनके अपितु इससे भी ज्यादा प्राप्त करते लेते वे किसी का भय नहीं करते। आलियों तथा मसाय खो ने इस पाप को रोकने का प्रयास किया किन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। मुल्तान वाले व्यापारी तथा व्यवसाय वाले एहतैकार करते थे। यद्यपि उन्हें शरा के आदेश समझाये जाते शिक्षा दी जाती किन्तु वे लोभ तथा लालच के कारण किसी बात पर ध्यान न देते थे। शरा के दण्ड का भय भी उन पर नहीं होता। एहतेकार करने वाले हूका से सस्ते समय में वस्त्र मोल लेते थे और उन्हें सुरक्षित कर लेते थे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उसे अधिक मूल्य पर बेचते थे। 50 में मोल लेते और 100 में बेचते थे। मैं जिस मूल्य पर एहतेकार करने वाले मोल लेते थे उसी मूलय पर क्रय कर लेता हूँ और उन्हें छिपाये नहीं रखता और। इस प्रकार बेचता हूँ कि एहतेकार का अन्त हो जाता है। इससे सर्वसाधारण को

लाभ प्राप्त होता है एहतेकार करने वालों के लिये यह एक प्रकार का दण्ड है। कुछ एहतेकार करने वाले इन्हें देहली तथा लाहौर से लाकर अत्यधिक महंगा बेचने के विचार से छिपा लेते थे। मेरा ख्वाजा अली कमाल दिलबानी नामक मित्र था। साल–साल तक मित्र को अपने घर एहतेकार के विचार से रखे रहा। जब कुछ व्यापारी देहली तथा लाहौर से शाही मिश्री लाये तो भाव गिरने लगा वह मित्र एहतेकार करने से बाज नहीं आता था और वह मित्र से शत्रु हो गया। तुम लोग जो कि शाहू के पुत्र हो और व्यापारियों के मध्य में प्रविष्ट हुये हो उत्तम व्यवहार की कोई सूचना नहीं रखते और इस परोपकार के बदले में छल द्वारा व्यवहार करते हो और कहते हो कि हमारे पास शाही फरमान इसी आशय का है। जकात तथा दानगाना जो कुछ होता होगा उसे हम देहली में अदा करेंगे। मुलतान में हमसे यह न लिया जाय। दास के ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि उसने फरमान की चिन्ता नहीं की और उनके सहायकों और सम्बन्धियों से 20 हजार तन के जकात तथा दान गाने के लेता है और इस विषय में असत्य बात कही गयी है। तुम लोग व्यापारी हो और तुम इस बात को उचित समझते हो कि सुल्तान के दासों के मध्य में विरोध तथा शत्रुता हो। तुमने बड़ा भारी अनर्थ किया है। सबसे बढ़कर यह है कि बयान में दासों को खुरासान ले जाने के विषय में लिखा है जो गलत है दास उन लोगों में नहीं है जो घूस लेकर इस ओर ध्यान दे और फरमान के विरुद्ध आचरण करें। ईश्वर ने जिन लोगों को पैदा किया है उनमें

बादशाह अद्भुत होता है। मनुष्य में ईर्ष्या, द्वेष क्रोध लालच तथा दुष्कर्म स्वाभाविक रूप से पाये जाते हैं ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जिनमें ईर्ष्या, द्वेष भावना क्रोध लालच तथा दुष्कर्म न पाया जाता है। यद्यपि बादशाह वैभव तथा ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति राजकोष के कारण समस्त मनुष्यों से पृथक होता है और उसके ऐश्वर्य के कारण लोगों के कारण लोगों को ऐसे कार्यों के विषय में जो करने चाहिये तथा ऐसे कार्यों के विषय में जो न करने चाहिये संसार वालों को आदेश प्राप्त होते रहते हैं, किन्तु समस्त दुष्ट ईर्ष्यालु द्वेष रखने वाले लालची तथा धूर्त बादशाह द्वारा अपनी इच्छानुसार अधिक से अधिक लाभप्राप्त करने का प्रयत्न किया करते है। अतः बुद्धिमान बादशाह वह है जो ईर्ष्यालु तथा दुष्टों की धूर्तता एवं विश्वासघात से सुरक्षित रहे और उनके जाल में न फंसे। भूतपूर्व आलिमों ने बादशाहों के दृढ़ एवं उत्कृष्ट विश्वासों के चिन्हों के विषय में विस्तार से लिखा है। एक चिन्ह यह है कि वह अपनी राजधानी नगरों प्रदेशों कस्बों में कठोर स्वभाव वाले मुहतसिब समस्त गैर इस्लामी बातों को रोकने वाला अधिकारी तथा निष्ठुर अमीर दाद (वह सुल्तान की अनुपस्थिति में दीवाने मुलाजिम का अध्यक्ष होता था और बहुत बड़ा अधिकारी होता था वह दादबक भी कहलाता था। नियुक्त करें और नाना प्रकार की सहायता से उनके अधिकार तथा शक्ति में वृद्धि करे ताकि वे मुसलमानों में अम्र मारूफ तथा निहिये मुन्कर को शान्ति प्रदान कर सके और दण्ड तथा दुराचार की रोकथाम कर सके जो लोग खुल्लम–खुल्ला पाप तथा

दुराचार करते हों उन्हें कठोर दण्ड दे तथा पाप करने वालों को नाना प्रकार के कष्ट में रखे। मदिरापान करने वालों वंशी बजाने वालों गायकों तथा जुआ खेलने वालों को पाप करने से रोक दे। ......जो लोग छिप कर वर्जित कार्य को करते हैं उनके विषय में अधिक पूछ–ताछ न कराये। आजकल अपहरण, बेईमानी, बेवफा, झूठ, हरामखोरी, अत्याचार, लोभ तथा ईर्ष्या इतनी अधिक बढ़ गयी है और मोहम्मद साहब की सुन्नत बिदअत में इतना परिवर्तित हो गयी है कि इसका उल्लेख संभव नहीं। बादशाह के लिए समाचार लिखने वाले बरीद सच्ची बात कहने वाले गुप्तचर तथा सतर्क मुशरिफ नियुक्त करने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है। बरीद के नियुक्त करने का प्रथम उद्देश्य यह है कि जब दूर तथा निकट के कवियों, वलियों तथा आमिलों को यह ज्ञात होता है कि उनके अच्छे बुरे हाल की जानकारी बादशाह को हो जायेगी तो वे प्रजा पर अत्याचार नहीं करते घूस नहीं लेते तथा पक्षपात नहीं करते यदि आमिलों तथा मुतसर्रिफों को यह ज्ञात होता है कि उनकी बातें बादशाह तक पहुंचेगी तो वे चोरी नहीं करते तथा अपमानित नहीं होते। वरीद को ईमानदार और सत्यनिष्ठ होना चाहिये। यदि वरीद चोर बेईमान कृपण कम असकल बदअसल हरजाई हरदरी लालची तथा भविष्य के विषय में नहीं सोचता तो प्रजा की उन्नति और बादशाह की भलाई का मामला उल्टा हो जाता है। यदि कोई बेईमान व्यक्ति बुद्धिमान हो तो वह इस प्रकार झूठ बोलने लगेगा जो सच सा प्रतीत होगा और जहां हानि पहुंचानी

आवश्यक है वहां लाभ होगा और जहां लाभ होगा वहां हानि होगी। अतः बादशाह को ऐसे व्यक्ति को बरीद मुशरिफ नियुक्त करना चाहिये जो शुद्ध आत्मा के तथा सच्चे हो। मोहम्मद साहब एहतेकार करने वाले के अनाज जलवा डालते। जो कोई एहतेकार करता है और जिसे एहतेकार की आदत पड़ जाती है उससे ईश्वर के दासों की जीविका बन्द हो जाती है। ईश्वर की अपने दासों के प्रति देन रुक जाती है यदि कोई बादशाह के आदेश एहतेकार से बाज न आये तो उसे निर्वासित कर देना चाहिये ताकि अन्य लोग इससे शिक्षा ग्रहण करें।[4]

एहतेकार द्वारा अनाज को भविष्य में अधिक मूल्य पर बेचने के विचार से इकट्ठा करना चोरबाजारी का उदाहरण प्रस्तुत करता है। किसी शासक के लिये यह आवश्यक है कि वह किसी से किसी प्रकार के घूस तथा उपहार स्वीकार न करें। आदेश देते समय पिता माता भाई तथा पुत्र के प्रति प्रेम राज्य की मसलहत सम्मान के पतन का भय शत्रुता तथा विरोध का भय कोई च ीज भी उसका मार्ग न रोकने पाये। इस प्रकार न्याय का पूर्ण 70 वर्ष की उपासना से अधिक है। कोई भी कमीना बादशाह का विश्वासपात्र नहीं हो सकता था और उसे कोई सेवा प्रदान नहीं की जाती थी। मैंने अपने राज्य के व्यापारियों तथा बाजारियों को इस प्रकार विवश कर दिया था कि वे सामग्री में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं कर सकते थे। क्रय–विक्रय में खुल्लम खुल्ला अपहरण न करते। अनाज का एहतेकार न करते और थोड़े से लाभ से सन्तुष्ट हो जाते थे।[5]

यद्यपि हिन्दुस्तान में देहली तथा इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी इस्लाम को प्रभुत्व प्राप्त है और तौहीद (एकेश्वर वाद) के वाक्य (अर्थात् इस्लाम का कलमा ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह) दिहस तथा दीनारो पर लिखे जाते हैं। इस्लामी सिक्के चलते हैं अथवा इस्लामी राज्य हैं।) किन्तु उसके आस पास के प्रदेश अब भी काफिरों के अधीन है और वहां मूर्ति पूजा व दुराचार होता हैं हिन्दुस्तान का बादशाह उन मार्ग भ्रष्ट लोगों से थोड़ी सी वस्तु (खराज) लेकर सन्तुष्ट है और उन्हें कुफ्र तथा दुराचार एवं व्यभिचार की अनुमति दे रखी हो। इस कारण तैमूर ने हमला करने का निश्चय किया। सुल्तान का कार्य शोषितों के प्रति न्याय से सम्बन्धित था यदि कोई उसकी सवारी के समय उसे कोई प्रार्थना पत्र देता तो वह उसी स्थान पर अपने घोड़े की लगाम खींच लेता और उसे अपने पास बुलवाकर उसका समस्त हाल सुनता और तत्पश्चात कहता "दुखी मैंने पिछली सुल्तानों के प्रथानुसार दीनों के कष्ट निवाकरण के लिये इतने दीवान नियुक्त कर रखे हैं तूने उनसे प्रार्थना क्यों नहीं की यदि वह कहता कि मैंने उनसे अनेकों बार प्रार्थना किया किन्तु उनकी टाल–मटोल देखकर राज सिंहासन के समक्ष निवेदन करना पड़ा। तो सुल्तान उन दीवानों के अधिकारियों को अपने समक्ष बुलवाता और उनके प्रति कठोरता प्रदर्शित करता। एक दिन सुल्तान दरबार कर रहा था। मलिक अब्दुल्लाह ने राज सिंहासन के समक्ष निवेदन किया कि शहंशाह के उत्सर्ग से सेवक के अधिकार में दो परगने हैं मालिक जिया उन्मूलक दास के

परगनों में घूस लेने के लिये अत्यधिक उलझता है। फिरोज शाह ने माकलिक शम्सुद्दीन को बुलवाया और अपनी हानि न पहुंचाने वाली जिह्वा से यह कहा कि अब्दुल्लाह क्या कहता है अबूरिजा ने उत्तर दिया कि मालिक अब्दुल्लाह के परगना का महसूस थोड़ा है तथा प्राप्ति अपार है। मलिक अब्दुल्लाह ने कहा कि संसार के बादशाहों के उत्सर्ग से ईश्वर की कृपा के कारण शहंशाह के राज्यकाल में खराज तथा महसूल एक से दस तक पहुंच गया है जिससे तू घूस लेता है उसे क्षमा कर देता है और जो तुझे घूस नहीं देता उसे तू कष्ट पहुंचाता है मेरे पास घूस नहीं है। मैं तुझे किस प्रकार रोकूं। इसी कारण मेरे कार्य में बहुत उलझ जाता है और मुझे बड़ा कष्ट पहुंचाया जाता है। जब अभिमानी मलिक शम्सुद्दीन अबू रिजा गुंजरात में था तो शहंशाह का आदेश यह था कि जो व्यापारी नील नदी के टापुओं से सुल्तान के लिये हाथी लाये और जो हाथी मार्ग में मर जाये तो उस हाथी का मूल्य भी उस व्यापारी को खजाने से दे दिया जाये इस आज्ञा के अनुसार दुष्ट मालिक शम्सुद्दीन ने झूठ बोलकर कुछ हाथियों का मूल्य दीवान ए विजारत से मुजरा कराके अपनी सम्पत्ति में सम्मिलित कर लिया। अधर्मी सामन्त की उबैद कवि नज्म इन्तैशार फलसफी के प्रभाव ने उसको निर्दयी बना दिया था। इसके साथ साथ उसने अपने समूह के उन आलिमों को भी पूर्ण रूप से दोषी ठहराया है जो उनके समक्ष प्राण के भय अथवा धन के लोभ में सत्य बात न कहते थे। वह लिखता है कि पर जैसे कुछ कृत धन भी जो थोड़ा बहुत पढ़े

लिखे थे और उन विधाओं को समझते थे जिनसे मनुष्य को यश प्राप्त होता है संसार के लाभ तथा लालच में पाखण्डपन करते थे और सुल्तान के विश्वास पात्र होकर शहर शरा के विरुद्ध हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में सत्य बात सुल्तान के समक्ष न कहते थे। प्राणो के भय से जो कि नश्वर है तथा धन सम्पत्ति के लिये जो पतनशील है, आतंकित रहते थे और तनके, जीतल तथा उसका विश्वास पात्र बनने के लोभ में धर्म के आदेशों के विरुद्ध उसके आदेशों की सहायता करते थे। अप्रमाणित रवायते पढ़ा करते थे।[6]

इब्नबतूता ने बड़े—बड़े अधिकारियों के घूस लेने की भी चर्चा की है। क्योंकि घूस के कारण उसे स्वयं कुछ समय तक के कष्ट भोगने पड़े और उसका ऋण अदायगी का सुल्तान द्वारा आदेश हो चुका था अदा न हो सका। जो लोग अनुचित रूप से धन सम्पत्ति प्राप्त कर लेना चाहते थे तथा लोभी और लालची थे एवं जिनकी इच्छा हजारों तथा लाखों प्राप्त करने की भी पूरी न होती थी वे सुल्तान तुगलक शाह जैसे बादशाह को पसन्द न करते थे।[7]

सुल्तान मोहम्मद तुगलक ने तांबे के सिक्के चालू किये और आदेश दिया कि क्रय—विक्रय में तांबे की मुद्रा से सोने तथा चांदी की मुद्रा के समान प्रचलित किया जाये। उपर्युक्त आदेश के पालन के फलस्वरूप हिन्दुओं के घरों से प्रत्येक घर टकसाल बन गया। राज्य के प्रदेशों के हिन्दुओं ने लाखों—करोड़ों तांबे की मुद्रा बनवा ली। सम्भवतः सुनार तथा अन्य कारीगर अधिकतर हिन्दू ही रहे होंगे।

इसीलिये बरनी ने हिन्दुओं के घरों को टकसाल कहा वैसे जाली सिक्के बनवाने में हिन्दू तथा मुसलमान सभी सम्मिलित रहे होंगे। लोभी तथा दरिद्र और मूर्ख लोगों ने तीन लाख बीघा ऊसर भूमि यह बचन देकर कृषि के लिये प्राप्त की कि तीन वर्ष उपरान्त वे उस भूमि से तीन हजार सवार देंगे। वे इस विषय में लिख कर दे देते थे। ये लोभी तथा मूर्ख लोग जो ऊसर भूमि पर कृषि करने के लिये तैयार हो जाते थे? जीन सहित घोड़े सुनहरी कबाये बेटिया तथा नकद (धन) पाते थ जो कुछ धन सम्पत्ति चाहे उन्हें इनाम के रूप में चाहे दान के रूप में चाहे सौन्धार के रूप में जिसमें प्रत्येक तीन लाख तनके पर पचास हजार रुपये तनके नकद प्राप्त होते थे उन्हें दी जाती थी उसे वह अपनी कमाई हुई धन सम्पत्ति समझ कर ले जाते थे और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं परव्यय करते थे चूंकि ऊसर भूमि पर जो कृषि के योग्य न थी किसी प्रकार की कृषि नहीं हो सकती थी। अतः वे दण्ड की प्रतीक्षा किया करते थे। दो वर्ष से लगभग 70 लाख टन्के उन लोगों को सौन्धान के रूप में प्राप्त कर दिये गये जिन्होंने ऊसर भूमि पर कृषि करने का दायित्व ले लिया था। तीन वर्ष के बीच में वे लोग उस भूमि के सौंवे अथवा हजारवें भाग पर भी कृषि कर सके। जिसके विषय में वह वचन दे चुके थे। यदि सुल्तान पट्टा के युद्ध से जीवित लौट आता तो उन लोगों में से जिन्होंने कृषि करने का दायित्व ले लिया था तथा सोन्धार स्वीकार कर लिया था किसी को भी जीवित न छोड़ता।[8]

सम्भवतः दो वर्ष 60–70 लाख तन्के प्रजा को सौन्धार के रूप में दे दिये गये जो कोई शाही उसलूब के अनुसार एक लाख तनके की कृषि करना स्वीकार करता था और तीसरे वर्ष एक हजार सवार तथा तीन लाख तनके की कृषि का भार उठाना निश्चित कर लेता था उसे सुनहरे काम के वस्त्र तथा पेटिया प्राप्त होती थे। वे जीन सहित घोड़े और दस–दस बीस–बीस हजार के नकद सौन्धार के अतिरिक्त सुल्तान से प्राप्त करते थे यदि शाही असलीब तथा प्रजा को अल्प दृष्टता तथा कमीनेपन के कारण असम्भव न ज्ञात होते और जिस प्रकार उन्हें तैयार किया गया था उसी प्रकार से क्रियान्वित हो जाते और 40 कोष लम्बी तथा 40 कोस चौड़ी जमीन पर कृषि होने लगती तो खलिहानों में अनाज न समाता और अनाज का भाव एक जीतल प्रति मन पहुंच जाता। इतना कर प्राप्त होता कि उसके द्वारा असंख्य तथा अपार सेना तैयार तथा सुसंगठित हो जाती है और उस सेना के बल से संसार की अच्छी इकलीमें (राज्य) अधिकार में आ जाती और सुव्यवस्थित रहती किन्तु लोभी लालची हवा बांधने वाले तथा परिणाम पर ध्यान न देने वाले सामने आ गये और असालीब के अनुसारखजाने से धन प्राप्त करने लगे। उन्हें वस्त्र, पेटिया, जीन सहित घोड़े खजाने से प्रदान होते थे और वे समस्त धन अपने व्यक्तिगत कार्यों में व्यय कर देते थे। वर्षों के अपने कार्य पूरे करते अपना विवाह करते तथा अपनी पुत्रियों का विवाह कर डालते निर्माण कराते तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति करते। तीसरे वर्ष के उपरान्त जब सुल्तान की

अनुपस्थिति में कबूल खलीफाती ने दीवान जिरायत (कृषि विभाग) में पूछताछ करायी तो पता चला कि हवा नापने वाले (बकवादी) 74 लाख तनके सौन्धार के रूप में ले जा चुके हैं दीवाने जिरायत की समस्त शिको में एक लाख बीघा पर भी कृषि नहीं हो सकी। परिणाम का ध्यान न रखने वाले कुछ लोग जिन्होंने कृषि का दायित्व लिया था दण्ड की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ भागने की तैयारी करने लगे कि जैसे ही शाही पताकाये वापस हो वे भाग खड़े हों।[9]

मुगल काल में प्रान्तीय स्तर की भ्रष्टाचार की काफी गुंजाइश थी। प्रांतीय प्रशासन केन्द्रीय प्रशासन का प्रतिरूप था। अकबर ने प्रत्येक सूबे में एक सिपाहसलार, दीवानबख्शी, मीर अदल, सद्र कोतवाल, मीर–ए–बहर तथा वाकयानवीश नियुक्त किया। भू राजस्व की व्यवस्था की देखभाल के लिये अमिल वितिकच्ची, फौतदार, खजानादान, कानूनगो व पटवारी होते थे। गुप्तचर व्यवस्था की देखभाल के लिये वाक्यानवीश होते थे। सूबे के मुख्य अधिकारी को नाजिम सिपहसालार सुबेदार या साहिब ए सूबा या वली कहते थे जिसकी नियुक्ति मुगल सम्राट किया करते थें इन सूबेदारों का कार्यकाल निश्चित नहीं होता था। किन्तु वे तीन चार वर्ष तक अपने पद पर रहते थे उनका सामयिक स्थानान्तरण होता रहता था। वे सदैव आशंकित रहते थे किन जाने कब उनका कहा स्थानान्तरण कर दिया जाये परिणाम स्वरूप वे इसी प्रयास में लगे रहते थे कि क्षेत्र से जितना अधिक से अधिक लाभ हासिल हो सके। हासिल कर ले। इस उद्देश्य की पूर्ति

के लिये वे प्रायः सही गलत हर कार्य करने लगते थे।

इन्हीं कारणों से सम्राटों ने सूबेदारों पर अंकुश बनाये रख उनके अधिकार व कार्य पूर्णतः निर्धारित रखा जिस समय उनकी नियुक्ति की जाती थी उन्हें उनके पदानुसार मनसब व सम्मान के साथ ही उनके पद से सम्बन्धित आवश्यक निर्देश भी दिये जाते थे। उन्हें उत्तरदायित्व कार्य कार्यक्षेत्र अधिकारी विशेषाधिकार, आचार व्यवहार कार्य अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति उनके सम्बन्ध एवं व्यवहार उनसे आज्ञाओं के पालन कराने व उनसे सहयोग लेने इत्यादि से अवगत कराया जाता था। उनसे ऐसी आशा की जाती थी कि वे अपने पद की गरिमा अपने व्यवहार तथा दैनिक जीवन में आदर्श प्रस्तुत करके बनाये रखेंगे। उन्हें निर्देश थे कि वे आवांछनीय तत्वों से दूर रहेंगे व साधारण लोगों से मेल जोल नहीं बढ़ायेंगे क्योंकि उससे पद की गरिमा कम होती थी उनसे कहा जाता था कि अपनी आय से अधिक व्यय न करें व अपने रहन सहन के स्तर को उचार बनाये रखेंगे। उन्हें निर्देश थे कि वे बोलचाल में संयम बनाये रखें अपने वचन का पालन कर जन कल्याण की भावना रखें व न्याय करें। उक्त आदर्शो व सिद्धान्तों से यह आज्ञा होता है कि मुगल सम्राट निचले स्तर पर भी भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिये प्रयत्नशील थे मुकल काल में प्रान्तीय शासन से प्रमुख अधिकारी सुबेदार के अधीन कार्य किया करते थे किन्तु कई महत्वपूर्ण विषय में केन्द्रीय प्रशासन के प्रतिरूप अधिकारी के प्रतिउत्तरदायी थी। अकबर के शक्ति सन्तुलन की नीति

अपनाकर प्रान्तीय अधिकारियों में शक्ति नियन्त्रित कर दी थी कि वे किन्ही परिस्थितियों में वे शक्तिशाली नहीं हो सकते थे। सुबेदार व दीवान एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। प्रान्तीय वख्शी जिसके अन्तर्गत गुप्तचर विभाग रहता था से भी अधिकारी सतर्क रहते थे। सभी प्रान्तीय अधिकारियों का समय–समय पर स्थानान्तरण होता रहता था ताकि वे शक्तिशाली न हो सके और भ्रष्टाचार में लिप्त न हो सके। केन्द्र व प्रान्त के गुप्तचरों के द्वारा उसके कार्यों की सूचनायें सम्राट को मिलती रहती थी यदि वे अत्याचारी, बेईमान भ्रष्टाचारी पाये जाते थे तो उन्हें सेवा से वंचित कर दिया जाता था। मुगल सम्राट स्वयं समय समय पर साम्राज्य के विभिन्न भागों का दौरा किया करते थे जिससे प्रान्तीय कर्मचारी बराबर सतर्क रहते थे।[10]

स्थानीय स्तर पर मुगल काल में प्रमुख अधिकारी कोतवाल, फौजदार अमल गुजार आमिल काजी बितिक्ची और खजानादार आदि थे। परगने में शिकदार, आमिल, कानूनगो, खजानदार, अमीन, चौधरी, कारकून आदि होते थे। हालांकि इन पदों पर योग्य एवं निष्ठावान कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। प्रान्त व उसकी विभिन्न इकाइयों के अधिकारियों पर केन्द्रीय प्रशासन का पूर्ण नियन्त्रण रहता था। उच्च अधिकारियों के समय समय पर स्थानान्तरण के कारण तथा शक्ति सन्तुलन की नीति के कारण कोई भी अधिकारी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने में समर्थन था यदि वह अपने अधिकारियों की सीमा से बाहर

जाता था तो उसके परिणाम वह भली–भांति समझता था। सभी प्रशासनिक इकाइयों में एक अधिकारी पर दूसरे अधिकारी का अंकुश लगा रहता था। प्रशासन का मुख्य उद्देश्य शांति व्यवस्था बनाये रखना व जन कल्याण करना था।[11]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण मुगल काल में केन्द्रीय प्रशासन के साथ प्रान्तीय और स्थानीय स्तर पर भी हालांकि भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिये हर सम्भव उपाय किये जाते थे लेकिन भ्रष्टाचार की गुंजाइश बनी रहती थी और कतिपय अधिकारी अवसर पाते ही अधिकाधिक लाभ उठाने से नहीं चूकते थे।

सन्दर्भ -

1. इब्न बतूता – किताब–उल–रहला, अनुदित – मेंहदी हसन, पृ0 115–121
2. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – आदि तुर्ककालीन भारत, पृ0 145–149
3. वही, पृ0 159–164
4. ज़ियाउद्दीन बरनी – तरीख–ए–फिरोज़शाही, पृ0 281–287
5. वही, पृ0 290–294
6. सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी – उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ0 119–125
7. इब्न बतूता – किताबुल रहला, अनुदित – मेंहदी हसन, पृ0 127–129
8. वही, पृ0 145–151
9. मोहम्मद यासीन – सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, पृ0 225–229
10. हरिशंकर श्रीवास्तव – मुग़ल शासन प्रणाली, पृ0 192–198
11. वही, पृ0 199–204

पंचम अध्याय

मध्यकाल में धार्मिक भ्रष्टाचार -

इस्लाम धर्म के संस्थापक एवं प्रचारक मक्का निवासी मुहम्मद साहब थे, जिनका जन्म 570 ई0 में हुआ था। मुहम्मद साहब के पितामह अब्दुल मुतलिव तथा पिता का नाम अब्दुल्ला था। ये कुरैशी कबीले के थे। मुहम्मद साहब के जन्म से पूर्व उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, अतएव जन्मोपरान्त उनका पालनपोषण उनके पितामह अब्दुल मुतलिव ने ही किया। अब्दुल मुतलिव की मृत्योपरान्त मुहम्मद साहब की देख–रेख उनके चाचा आबूतालिव ने जो कि एक व्यापारी थे, ने की। मुहम्मद साहब ने अपने चाचा के साथ रहकर व्यापार करना प्रारम्भ किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने सीरिया की यात्रा भी की। पच्चीस वर्ष की आयु में उन्होंने खुदैजा नामक विधवा स्त्री से विवाह किया। प्रारम्भ ही से मुहम्मद साहब की धार्मिक प्रवृत्ति थी। वे रमज़ान के महीने में एकांतवास ग्रहण करके अपना समय चिन्तन मनन में व्यतीत करते थे। चालीस वर्ष की आयु में जब वे मक्का के समीप स्थित हीरा पर्वत में चिनतन व मनन में लीन थे तो उन्हें ईश्वर का सन्देश प्राप्त हुआ कि "अल्लाह के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा ईश्वर नहीं है, व मुहम्मद उसका पैगम्बर है।" उन्होंने सर्वप्रथम अपनी पत्नी को उपदेश देकर उसने अपनी शिष्या बनाया। इस समय सम्पूर्ण अरब में मूर्तिपूजा का प्रचलन था। विभिन्न कबायली जातियाँ पारस्परिक वैमनस्य, वाह्य आडम्बर तथा अन्ध विश्वास में फंसे हुए थे। मुहम्मद साहब का मुख्य उद्देश्य विभिन्न कबायली जातियों को एकता

के सूत्र में बाँधना, अन्ध विश्वासों से उन्हें मुक्त करना तथा उन्हें विश्वास दिलाना कि ईश्वर या खुदा विश्व नेतृत्व था न्यायशील है। जो कुछ वाक्य मुहम्मद साहब के मुख से ईश्वर की प्रेरणा से निकलते थे वे उसके अनुयायी ग्रहण कर लिया करते थे। मुहम्मद साहब के अनुसार प्रत्येक जाति को पथ–प्रदर्शन कराने के लिये ईश्वर भेजता है जो कि उसकी सच्ची आज्ञाओं का रहस्य बतलाते हैं। अतः ऐसे ही पैगम्बरों के वचनों के अनुसार चलना अपने कर्त्तव्यों का पालन करना ही ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन कहा जा सकता है। मुहम्मद साहब ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया, अन्धविश्वासों का विरोध किया, एकेश्वरोपासना, भातृत्व व समानता पर बल दिया, जिससे न उनके स्वयं कुरैश कबीले के लागे वरन् अनेक अन्य लोग भी नाराज हो गये व उनके उपदेशों का खुल कर विरोध करने लगे। विवश होकर मुहम्मद साहब को मक्का छोड़कर मदीना जाना पड़ा। मदीने में उनका भव्य स्वागत हुआ व उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ी। उन्होंने वहाँ के कबीलों को संगठित किया, उन्हें इस्लाम ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया तथा उन्होंने अन्त में मक्का पर विजय पा ली। मक्का के लोगों ने उन्हें अपना नेता व अल्लाह का पैग़म्बर स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् पूर्व की तुलना में वे इस्लाम के प्रचार में जोर–शोर से लग गए। तिरसठ वर्ष की आयु में 632 ई0 में उनका देहान्त हो गया।[1]

मुहम्मद साहब के उपदेश 'कुरान शरीफ' में संकलित किए गए। कुरान के

मूल सिद्धान्तों के अनुसार इस लोक–परलोक में केवल एक ही ईश्वर, जो कि समस्त संसार का रचयिता, पोषक, अरक्षक है, जो सर्वशक्तिमान, अत्यन्त कृपालु, दयालु है एवम् सर्वदृष्टा है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नहीं है तथा मुहम्मद साहब उसकी ईश्वर नहीं है तथा मुहम्मद साहब उसी ईश्वर के पैगम्बर है। उस महान् ईश्वर का न कोई आदि है और न अन्तता इस्लाम के पैग़म्बर की हैसियत से मुहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों के लिये ईश्वरोपासना के सम्बन्ध में कई साधनाए निर्धारित की, जिनकी चर्चा कुरान में कई स्थानों पर मिलती है। यह साधनाएं 'हकीकत' (ज्ञानमार्ग) तरीकत (भक्तिमार्ग) तथा 'शरीयत' (कर्ममार्ग) से सम्बन्धित है। इन्हीं साधनाओं को उन्होंने इस्लाम धर्म का आधार सम्बन्ध बनाकर उन्हें प्रत्येक मुसलमान के लिए पाँच कर्त्तव्यों का पालन करना अनिवार्य कर दिया। प्रथम, कलमा, अर्थात् ईश्वर व उसके पैगम्बर मुहम्मद साहब पर पूर्ण विश्वास रखना। द्वितीय, नमाज़ (प्रार्थना) प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य। है कि वह प्रातः (फज़िर) मध्यान्ह में (जुहर) दोपहर के पश्चात् (अस्र) सूर्यास्त के समय (मग़रिब) तथा रात्रि के समय (ऐशा) की नमाज़ें पढ़ें। तृतीय, प्रत्येक मुसलमान के लिए प्रतिवर्ष में अपनी आय के अनुपात में कुछ धन जकात (दान) में निर्धनों, दरिद्रों व निःस हाय व्यक्तियों को देना अनिवार्य माना गया। चतुर्थ, प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है कि वह रमज़ा न के मजाहीने में व्रत (रोज़ा) रखे। पंचम, प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवनकाल में

मक्का की पवित्र यात्रा (हज़) अवश्य करे। अपने जीवनकाल में मुहम्मद साहब ने जिस तन्मयता व लगन से अपने अनुयायियों को एकता के सूत्र में बांधा वही सूत्र धागे उनकी मृत्योपरान्त टूटने लगे व उनके अनुयायी पारस्परिक संघर्ष एवम् कलह में उलझ गए। मुहम्मद साहब ने अपनी पुत्री का विवाह अली से किया। उनकी मृत्योपरान्त जब उत्तराधिकार का प्रश्न उठा तो उने अनुयायी दो दलों में विभाजित हो गए। प्रथम दल ने मुहम्मद साहब के परम शिष्य अबूबक्र को उनका उत्तराधिकारी चुना। दूसरे दल में अली को अपना नेता स्वीकार करके एक दूसरी वंश परम्परा प्रारम्भ की। अबुबक्र के समर्थक सुन्नी व अली के समर्थक शिया कहलाए। अबुबक्र के उपरान्त तीन अन्य अन्य खलीफा, उमर, उस्मान व अली क्रमशः बहुमत से मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारी निर्वाचित हुए परन्तु शिया सम्प्रदाय के लोग प्रारम्भ ही से अबुबक्र, उमर व उसमान के उत्तराधिकार को अवैध व अनुचित मानते रहे। इस प्रकार एक ओर तो सुन्नियों का विश्वास इस्लाम की लोकतंत्रात्मक प्रवृत्ति में तो दूसरी ओर शियाओं में वंशानुगत प्रवृत्ति थी। दोनों ही समुदायों में सैद्धान्तिक मतभेद थे, परन्तु दोनों ही का इस्लाम में अटूट विश्वास था। मुहम्मद साहब के समय ही इस्लाम का प्रसार प्रारम्भ हो गया था। अरब के मुसलमान व्यापारी भारत के समुद्री तटों पर स्थित बन्दरगाहों से व्यापार करने लगे। धीरे–धीरे वह व्यापारी इन बन्दरगाहों पर आकर बसने भी लगे। खलीफा उमर (634–644) के शासनकाल में अरबों का साम्राज्य मकरान व सीस्तान तक

फैल गया। इसी काल में अरबों ने थाना पर भी आक्रमण किया जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। कालान्तर में ईराक के गवर्नर हज्जाज ने अपने भतीजे व सेनानायक मुहम्मद बिन कासिम को सिंध पर आक्रमण करने के लिए नियुक्त किया। मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध के शासक राजा दाहिर को पराजित करके सिन्ध पर अरबों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। अरबों द्वारा सिन्ध विजय के पूर्व मुसलमान भारत के पश्चिमी समुद्री तट तथा पश्चिम के मकरान तक पहुँच चुके थे। सिन्ध की विजय ने मुसलमान प्रजातियों के प्रवास के लिए नवीन द्वारा खोल दिये। 8वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर 13 शताब्दी के प्रारम्भ तक जब कि उत्तरी भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना हुई, मुसलमान संसार के विभिन्न भागों से अनेक प्रजातियों के लोग, सैनिकों, योद्धा, दार्शनिकों, शिक्षकों, साहित्यकार, कलाकारों, सन्तों के रूप में भारतवर्ष के विभिन्न भागों में आए व बस गए। इन मुसलमान प्रजातियों का भारत में आगमन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।[2]

अरबों द्वारा सिन्ध विजय के उपरान्त अगली तीन शताब्दियों में मुसलमान न केवल सिन्ध मुल्तान वरन् सिन्ध के समुद्रतटीय प्रदेशों, कठियावाड, गुजरात तथा कोंकण में बस गए। उनमें से कुछ मुसलमान मालवा तथा कन्नौज तक पहुंचे। काबुल, सोमनाथ, भड़ौच, खम्भात तथा चौल में मस्जिद बने तथा मुसलमानों की छोटी–छोटी अनेक बस्तियां बसीं, अनेक हिन्दू शासकों ने मुसलमानों का

स्वागत किया और उनके प्रति उदारता दिखाई। सुलेमान, मसूदी इब्ब शेकल तथा आबु जईद ने गुजरात के शासक बलादास की मुसलमानों के प्रति उदारता कीं अत्यन्त प्रशंसा की। दसवीं शताब्दी में गजनी के सुल्तान महमूद ने मुसलमानों के लिए भारत के द्वारा खोल दिए। पश्चिमी भारत में मुसलमानों की सख्या में वृद्धि हुई। हिन्दू शासकों ने मुसलमान व्यापारियों के साथ सद् व्यवहार किया। जब कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों की मस्जिद तोड़ दी तो सिद्धराज (1094–1143) ने मुसलमानों को नई मस्जिद बनाने के लिए धन दिया। यही नहीं अनेक हिन्दू शासकों ने मुसलमानों को सेना में भर्ती किया। बाबारिहान अनेक दरवेशों के साथ बगदाद से आये व भड़ौच मे बस गए। 1067 ई0 के लगभग यमन से शिया मत मानने वाले वोहरा समुदाय के लोग गुजरात में आकर बसे। 1094–1143 में रुकनुरुद्दीन से गुजरात के कुनवियों, खरदास व कोरियों को मुसलमान बनाया। इसी काल में 'काशीफुल महजूब' का रचयिता अल छजवैरी गजनी से आया व लाहौर में रहने लगा जहाँ उसकी मृत्यु 465 हि0 में हुई। 12वीं शताब्दी में शेख इस्माइल बुखारी तथा फरीदउद्दीन चिश्ती अजमेर आए व वहीं रहने लगे। इस प्रकार से अनेक मुसलमानों का भारत में आगमन निरन्तर होता रहा।[3]

जन्म स्थान एवम् जन्मतिथि के सम्बन्ध में अनेक विचार हैं। सम्भवतः उनका जन्म 1492 इ0 में काशी में हुआ था। वे एक विधवा ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न हुए थे। उनका पालन–पोषण नीरू व नीमा नामक जुलाहे दम्पत्ति ने किया था। कबीर का प्रारम्भिक जीवन उक्त मुसलमान परिवार के घर में व्यतीत हुआ। नीरू व नीमा इतने गरीब थे कि वे उसकी शिक्षा का प्रबन्ध नही कर सके। कबीर ने सन्तों के सत्संग से ज्ञान प्राप्त किया। काशी हिन्दू–मुस्लिम शिक्षा का महान् केन्द्र था। वह एक धार्मिक स्थल भी था। अपनी ज्ञान की क्षुधा शान्त करने में वे निरन्तर लगे रहे। कालान्तर में उन्होंने रामानन्द को अपना गुरू बना लिया। उन्होंने भ्रमण किया और वे अनेक स्थानों में सूफी सन्तों से मिले। मानिकपुर में उन्होंने अन्य पीर से उपदेश सुने। उन्होंने सन्तों से मौखिक ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने कभी कोई ग्रन्थ नहीं पढ़ा और न ही संस्कृत, अरबी व फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। फिर भी अपनी वाणियों में उन्होंने सूफीमत व हिन्दू दर्शन के शब्दों का प्रयोग सुलभतः किया। ईश्वर की भक्ति में लीन होने वाले व्यक्तियों के लिए ज्ञान व शिक्षा प्राप्त करना लक्ष्य नहीं था। कबीर का मस्तिष्क हिन्दू–मुस्लिम परम्पराओं से ओत–प्रोत था। वे दोनों धर्मो के सिद्धान्तों से पूर्णतः अवगत थे। अतएव उनका लक्ष्य केवल ज्ञान प्राप्त करना न था। वे परम–ज्ञान प्रापत करना चाहते थे और मारिफत की सीढ़ी तक पहंचना चाहते थे, जो कि बाद में उन्होंने प्राप्त कर ली। विभिन्न स्रोतों

से ज्ञान व शिक्षा उपलब्ध करके वे बनारस में बस गए जहां उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया। उनके स्वतन्त्र विचारों से हिन्दू व मुसलमान दोनों रुष्ट हुये, क्योंकि उन्होंने मूर्ति पूजा, ब्रह्म–आडम्बर, जांति–पांति के भेद–भाव, बहुईश्वरवाद, अन्धविश्वास, व सामाजिक कुरीतियों का खुल्लम–खुल्ला उपहास करते हुए विरोध व खण्डन किया। रूढ़िवादी पण्डितों व मौलवियों ने उन्हें सताया। परन्तु सुल्तान सिकन्दर लोदी (1488–1517) ने कबीर की सादगी, उच्च विचारों एवं ईश्वर में तन्मयता से प्रसन्न होकर उनकी रक्षा की। उन्होंने उन्हें कुछ समय के लिए बनारस से बाहर कर दिया। परन्तु कबीर फिर वहीं आकर निवास करने लगे। कबीर के उपदेश तत्कालीन विचारकों के विचारों के समान थे। उन्हें दण्ड देने की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने हिन्दू–मुसलमानों को आकृष्ट किया। दोनों ही जातियों के लोग उनके अत्यन्त भक्त हो गये। वे साधारण गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। संसार परित्याग देने व सन्यासी जीवन व्यतीत करने में उनका विश्वास न था। उन्होंने लोई से विवाह किया। उससे उनके पुत्र कमाली उत्पन्न हुए। उन्होंने जुलाहों का व्यवसाय अपनाया। कपड़ा बुनते समय ही वे उपदेश दिया करते थे। अन्तिम समय आने का आभास मिलते ही वे काशी छोड़कर मगहर आए जहाँ उनकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु पर उनके पार्थिव शरीर के लिए हिन्दू– मुसलमानों में झगड़ा हुआ। हिन्दू उनके शव का दाह संस्कार करना चाहते थे और मुसलमान दफन करना चाहते थे। कबीर के विचार इतने

क्रान्तिकारी व उदार थे कि हिन्दू–मुसलमानों, दोनों ही ने उन्हें अपना समझा। दोनों ही जातियों ने उनकी प्रशंसा की व उन्हें स्वीकार किया, परन्तु उनकी मृत्यु पर परस्पर में झगड़ा करने से यह सिद्ध होता है कि वे उनके उपदेश को भूल गए। कबीर ने जीवन भर एकता, भ्रातृत्व, समानता व बन्धुत्व पर बल दिया। कबीर ने जांति–पांति के भेद–भाव को, हिन्दू दर्शन के छः विचारधाराओं, तथा ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित चार आश्रमों को अस्वीकार किया। उनके अनुसार जिस धर्म में भक्ति का कोई स्थान नहीं है वह धर्म नहीं। सन्यासी जीवन, तप, व्रत, दान सभी भजन बिना व्यर्थ है। रमायनी, शब्द तथा साखियों के माध्यम से उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को उपदेश दिए। उन्होंने किसी भी धर्म को प्राथमिकता नहीं दी। उन्होंने वही उपदेश दिए जिसकी प्रशंसा दोनों धर्मों के लोग कर सकें। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक जो कुछ भी उनके मन में आया सरल ढंग से कह दिया। कबीर का उद्देश्य प्रेम–धर्म का प्रचार करना था जिससे कि सभी जातियाँ व धर्म समन्वीकृत किए जा सके। किया। उन्होंने हिन्दू धर्म व इस्लाम के सभी दिखावटी तत्वों का बहिष्कार किया। उन्होंने उन सिद्धान्तों का खण्डन किया जो कि एकता के विरुद्ध तथा मानव कल्याण के प्रतिकूल थे। उन्होंने दोनों धर्मों की समान बातें लेकर दोनों में समानताएं बताने का प्रयास किया। उन्होंने दोनों धर्मों की दार्शनिक विचार, उनके सिद्धान्त व आडम्बरों की तुलनाएं व आलोचनाएं की। उन्होंने दोनों धर्मों की दार्शनिक विचार, उनके सिद्धान्त व आडम्बरों की तुलनाएं

व आलोचनाएं की। उन्होंने दोनों धर्मों के मूल सिद्धान्तों के मूल्य की प्रशंसा करते हुए ब्राह्म आडम्बरों का खण्डन किया। उन्होंने कहा कि हिन्दू मन्दिर जाते हैं, मुसलमान मस्जिद जाते हैं परन्तु कबीर वहीं जाता जाता है जो कि दोनों को ज्ञात है। न वे हिन्दू हैं न मुसलमान। उनका शरीर पांच तत्वों से बना हुआ है जिसमें कि ईश्वर की लीला है। इस शरीर में मक्का काशी हो गया है और राम रहीम हो गए हैं। वे अवतारवाद व शास्त्रविहित नियमों के विरुद्ध थे। उनका उद्देश्य कभी किसी प्रचलित धर्म व सम्प्रदाय का अनुसरण करना नहीं रहा। उन्होंने कभी किसी नवीन पंथ की स्थापना नहीं की।[4]

भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों में गुरु नानक देव का नाम सर्वप्रमुख है। उनका जन्म 15 अप्रैल 1495 ई0 को पंजाब में तलबंडी नामक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम कालूचन्द व माता का नाम तृपता था। नाना के घर जन्म लेने के कारण कालू व तृपता के पुत्र का नाम नानक रखा गया। बचपन में नानक शान्त स्वभाव के थे। पाँच वर्ष की आयु में उन्हें अक्षर ज्ञान करवाया गया। उन्होंने आलौकिक प्रतिभा व विलक्षण बुद्धि का परिचय देना प्रारम्भ किया। उन्होंने पंजाबी, संस्कृत, फारसी की शिक्षा प्राप्त की। उनके शिक्षकों ने उन्हें असाधारण बालक पाया। सैय्यद हुसैन नामक मुसलमान ने उन्हें इस्लाम धर्म के सुन्नी सम्प्रदाय की अनेक बातें बताई। नानक का ध्यान पुस्तकों व शिक्षकों की बातों में नहीं लगता था। वे एकान्तवास व चिंतन अधिक पसन्द करते थे। वे सन्तों की

संगत करते थे। उनके सत्संग में आकर वे आध्यात्मवाद की ओर झुके। उनके माता–पिता ने उन्हें पैत्रिक व्यवसाय में लगाने की चेष्टा की परन्तु उनमें उनका मन न लगा। कालान्तर में उन्होंने दौलत खाँ लोदी के यहाँ मोदी खाने की नौकरी कर ली। उन्होंने सुलखनी से विवाह करके गृहस्थ जीवन प्रारम्भ किया। परन्तु गृहस्थ जीवन में उनकी रुचि न हुई। उन्होंने घरबार छोड़कर भ्रमण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने अनेक सन्तों व महान सूफी सन्त शेखफरीद के साथ सत्संग किया। उन्होंने मदीना, बगदाद, काबुल, काश्मीर, के अतिरिक्त सिंहलद्वीप तक की यात्राएं की। उनकी मृत्यु करतारपुर में 1538 ई0 में हुई।

इस काल में निर्गुण धारा के एक और महान् सन्त हुए। उनका नाम दादूदयाल था। उनका जन्म अहमदाबाद में 1544 ई0 में हुआ था। पत्नी की मृत्योपरान्त वे सन्यासी हो गए। वे कबीर पंथी थे। उन्होंने अपना अधिक समय अजमेर, दिल्ली, आगरा आदि स्थानों में व्यतीत किया। अन्त में नरैना में रहने लगे, जहाँ उनका देहान्त 1603 ई0 में हुआ। दादू दयाल ने भी ईश्वर की सत्यता, व्यापकता, सतगुरु की महिमा, हिन्दू, मुस्लिम एकता, पर बल दिया। उन्होंने समाज में प्रचलित ऊँच–नीच की भावना तथा सामाजिक कुरीतियों, का विरोध किया। उनके विचार में अज्ञानता दूर होने पर अल्लाह व राम के कोई भेद नहीं रहता। उन्होंने हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयास किया।[5]

मीरा मेड़ता में रत्नसिंह राठौर की पुत्री थी। उनका जन्म 1499 ई0 में हुआ

था। उनका विवाह उदयपुर के प्रसिद्ध राणा संग्राम सिंह के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से हुआ था। विवाह के कुछ वर्षो बाद भोजराज की मृत्यु हो गई। इस प्रकार युवावस्था में मीरा विधवा हो गई। पति की मृत्यु के पश्चात् मीरा ने अपना सर्वस्व जीवन कृष्ण–भक्ति में अर्पित कर दिया। वे सदैव कृष्ण की उपासना में लीन रहती थी। वे कृष्ण की भक्ति मे विभोर होकर अन्य सन्तों के साथ नृत्य–गान करती थी, जिससे कि उसके परिवार के लोग उससे नाराज रहते थे। उन्हें विष भी दिया गया परन्तु उसका कोई प्रभाव उन पर न पड़ा। अन्त में घरबार छोड़कर वृन्दावन चली गई, उसके बाद वे द्वारिका में निवास करने लगी। उनकी मृत्यु द्वारिका में 1546 ई0 में हुई। मीरा की भक्ति में माधुर्य व प्रेम–भाव था। उन्होंने कृष्ण को ही अपना पति माना। उन्होंने भजन व कीर्तन के माध्यम से कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।[6]

बल्लभाचार्य के समकालीन सगुण भक्ति के महान् सन्तों में चैतन्य महाप्रभु भी थे उनका जन्म 1485 ई0 में बंगाल में स्थित नदिया ग्राम में हुआ था। वे कृष्ण के अनन्य भक्त थे। जनता उन्हें राधा का अवतार मानती थी। उनका लक्ष्य भगवान भक्ति तथा कृष्ण भगवान के नाम का प्रचार करना था। उन्होंने कभी अन्य धर्मो व साधकों की निन्दा नहीं की। उनकी भक्ति में द्वैत व अद्वैत सिद्धान्तों का समन्वीकरण मिलता है। उन्होंने ग्रसित जीवों के उद्धार के लिए ईश्वर के नाम व जप को ही प्रमुख साधन माना है। उन्होंने अपने शिक्षाष्टक में अपने उपदेशों का

सार भर दिया है। वे ईश्वर के अनन्य भक्त थे व प्रेमी थे। उन्होंने 25 वर्ष की आयु में बैराग ले लिया। तदुपरान्त उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। अन्त में वे पुरी में रहने लगे। मध्य युग में जितना प्रभाव तुलसीदास का सामान्य जनता पर पड़ा उतना सम्भवतः किसी अन्य सन्त का नही। तुलसीदास की जन्म तिथि संदिग्ध है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उनका जन्म 1497 ई0 में अन्य इतिहासकारों के अनुसार 1532 ई0 में हुआ था। उनका जन्म बांदा में राजापुर नामक ग्राम में हुआ था। उनका विवाह रत्नावली से हुआ था। वे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम किया करते थे जिसके कारण वे उसे एक पल के लिए भी नहीं छोड़ते थे। कालान्तर में उनकी पत्नी ने उन्हें ऐसी फटकार सुनाई कि उन्होंने संसार त्याग दिया और वे राम भक्ति में पूर्णतः लीन हो गए। उन्होंने सर्वप्रथम नरहरि आनन्द से शिक्षा प्राप्त की तथा चित्रकूट, अयोध्या व बनारस का भ्रमण किया। उन्होंने 1574 ई0 में अयोध्या में रामचरितमानस की रचना की। उनकी अन्य रचनाओं में जानकी मंगल, पार्वती मंगल, गीतावली, विनय पत्रिका, सतसई, कवितावली, हनुमानबाहुक इत्यादि है। किन्तु उनकी सर्वोत्तम रचना रामचरित मानस है, जिसमें उन्होंने राम को अवतार माना है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक विचारों से ओतप्रोत है। रामचरित मानस ने करोड़ो भारतवासियों को प्रभावित किया है। उनकी मृत्यु 91 वर्ष की आयु में 1623 ई0 में हुई।[7]

जिस गतिशीलता से 11वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी तक मुसलमान

आक्रमणकारियों ने इस्लाम के नाम पर हिन्दू मन्दिरों पर प्रहार किया उसकी स्वीकृति न उनका धर्म देता था न धार्मिक वर्ग। हिन्दुओं के प्रति किए गए अत्याचार से हिन्दुओं के मन में जो द्वेष उत्पन्न हुआ उसे केवल सन्त ही दूर कर सकते थे। भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों ने इसीलिए हिन्दू–मुसलमान एकता व समन्वयता पर बल दिया। यह सत्य है कि उनके प्रयासों के बावजूद भी मूर्ति पूजा, अन्ध–विश्वास का ब्राहा आडम्बर समाप्त नहीं हो सके। परन्तु यह सत्य कि धर्म अब केवल ब्राह्मणों का एकाधिकार न होकर जनसाधारण का विषय बन चुका था, से इन्कार नहीं किया जा सकता। 14वीं व 15वीं शताब्दियों ने हिन्दू समाज के निम्न वर्ग में कबीर, पीपा, धना, रैदास जैसे महान् सन्त भी दिए। दलित वर्ग की सदियों तक उपेक्षा हुई थी, किन्तु अब भक्तों के प्रभाव से वह सुधर रही थी। इस दृष्टि से भक्ति आन्दोलन का भी विशेष महत्व है। इस काल में उत्तरी भारत के सभी प्रदेशों में कोई न कोई सन्त अवश्य हुआ जिसने प्रादेशिक भाषा में उपदेश दिये। प्रादेशिक भाषाएँ भक्तों व साधकों की वाणियों से साहित्य की अनमोल धरोहर हो गई। यही नहीं, सत्य, भक्ति, निष्ठा, समन्वय, एकेश्वरवाद, प्रेम आदि विभिन्न धाराओं का समन्वयीकरण हुआ। भक्ति आन्दोलन ने मानव को शान्ति व भ्रातृत्व का सन्देश दिया जिससे हिन्दू–मुसलमान सन्निकट आने में सफल हुए।

सूफीमत को बहुत से सूफियों ने सबसे प्राचीन धर्म माना है। उनके अनुसार सूफी मत के मूल प्रवर्तक स्वयं आदम या आदि पुरुष थे। परन्तु कुछ विद्वानों का

मत है कि सूफी मत के प्रथम प्रचारक मुहम्मद साहब स्वयं थे, अन्य लोगो के विचार में सूफीमत के मौलिक सिद्धान्तों का कुरान में अभाव पाकर या कुरान के साथ उसका पूर्ण सामंजस्य स्थापित कर सकने के कारण अनेक कट्टर मुसलमानों ने सूफी मत को विधर्मियों का मत ठहराकर उसकी निन्दा की। वास्तव में सूफी शब्द का प्रयोग हिजरी वर्ष की द्वितीय शताब्दी के अन्त में 815 ई0 में प्रथम बाद प्रयोग किया गया। मुसलमानों के विचार में सूफीवाद का उत्कर्ष मुहम्मद साहब के समय हुआ क्योंकि सूफी सम्प्रदाय के लोग अपने को उन्हीं का उत्तराधिकारी मानते हैं। मुहम्मद साहब को ईश्वर से दो स्रोतों से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसका एक रूप तो कुरान में दूसरा उनके हृदय से निकली हुई वाणी केवल गिने चुने लोगों ने ग्रहण की। यद्यपि सूफीमत का विकास कई चरणों में हुआ परन्तु उसका आध्यात्मवाद का स्त्रोत कुरान ही है। अल हुजैवरी ने कहा है कि मानव का ईश्वर के प्रति प्रेम उसके पवित्र हृदय का प्रमुख लक्षण है। वह अपने प्रियतम को सन्तुष्ट करना चाहता है और उसका दर्शन पाने के लिए बेचैन रहता है। वह उसका निरन्तर स्मरण करता है। ईश्वर से साक्षात्कार करने की उत्कृष्ट इच्छा उसे गुरु ढूढ़ने पर बाध्य करती है। क्योंकि बिना गुरु की सहायता से ईश्वर की अनुभूति होना मुश्किल होता है। साधक का कर्तव्य है कि वह अपने पीर या गुरू से अत्यधिक प्रेम करें क्योंकि उसके लिए इस संसार में उससे बढ़कर कोई नहीं होता। बिशप जॉन ए0 सुभान के अनुसार चिश्तिया सम्प्रदाय की स्थापना ख्वाजा

अबु इस्हाक समी चिश्ती ने की थी वे अली की नवीं पीढ़ी में थे। वे एशिया माइनर से प्रवासित होकर खुरासान में स्थित चिश्त में जाकर बस गये थे इसलिए वे चिश्ती कहलाये। परन्तु भारतवर्ष में चिश्ती सम्प्रदाय की वचिारधारा का प्रचार सर्वप्रथम ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने किया। उनका जन्म 1141 ई0 में सिजिस्तान में हुआ था। उनके पिता का नाम सैय्यद ग्यासुद्दीन था, जो कि बहुत ही धार्मिक व्यक्ति थे। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की बाल्यावस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। सम्पत्ति के रूप में वे केवल एक चक्की व उद्यान छोड़कर ही गये। एक बार शेख मुईनद्दीन अपने बाग में पौधे को सींच रहे थे कि उनके बाग के समीप से इब्राहीम कुन्दुजी नामक सन्त गुजरे। शेख ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। उनके संसर्ग से उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान व शुभकामनाएँ प्राप्त हुई। उसी काल में कराखीता व गजतुर्को ने सिजिस्तान पर आक्रमण किया, जिसका प्रभाव शेख मुईनुद्दीन पर इतना पड़ा कि उन्होंने सांसारिक जीवन त्याग दिया। वे सिजिस्तान छोड़कर भ्रमण करने के लिए निकले। उन्होंने समरकन्द व बुखारा में खानकाहों में जाकर अनेक सन्तों से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया। ईराक जाते समय हरवन नामक स्थान में उन्होंने ख्वाजा उस्मान के दर्शन किए। शेख मुईनुद्दीन चिश्ती उनसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि तत्काल वे उनके शिष्य बन गय। बीस वर्ष तक वे उक्त सन्त के साथ भ्रमण करते रहै व उनसे ज्ञान प्रापत करते रहे। बाद में उन्होंने स्वतन्त्र रूप से भ्रमण करना प्रारम्भ किया। भ्रमण के दौरान वे शेख

अब्दुल कादिर सोहरावर्दी, शेख आबु सईद तबरेजी आदि महान् विद्वानों एवम् सूफी सन्तों के सम्पर्क मे आए जिनका अनेक जीवन व विचारों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इस काल के सभी इस्लामी केन्द्रों, समरकन्द, बुखारा, बगदाद, निशापुर, तबरेज, इस्फाहान, सब्जवार, बल्ख, गजनी आदि में वे गये और उन्होंने मध्यकाल में मुसलमानों के धार्मिक जीवन को निकट से देखा। उनके आध्यात्मिक जीवन से लोक इतना अधिक प्रभावित हुये कि वे उनके शिष्य बन गए। उन्होंने सब्जावर व बल्ख में अपने प्रतिनिधियों (खलीफाओं) को उनकी विचारधारा प्रचारित करने के लिए नियुक्त किया। मंगोल आक्रमणों के कारण उन्हे स्वदेश छोड़कर भारत आना पड़ा। वे लाहौर पहुंचे, जहाँ उन्होंने शेख अली हुजवैरी के मकबरे के सम्मुख प्रार्थना की, तत्पश्चात् उन्होंने अजमेर के लिए प्रस्थान किया। शेख बख्तियार काकी (1235 ई0) ख्वाजा मुईनद्दीन चिश्ती के दूसरे सुविख्यात शिष्य थे। वे औश, जो कि हल्लाजी रहस्यवादियों का महान् केन्द्र था, के निवासी थे। औश में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे बगदाद गये जहां वे शेख अब्दुर कादिर गीलानी, शेख शिहाबुद्दीनी सोहरावर्दी, काजी हमीद उद्दीन, शेख औहउद्दीन किरमानी के सम्पर्क में आए। समरकन्द में बावुलौस की मस्जिद में उनकी भेंट ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से हुई। ख्वाजा ने उन्हें अपने शिष्यों में सम्मिलित कर लिया। जब ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने भारत की ओर प्रस्थान किया तो शेख बख्तियार काकी अन्य देशों का भ्रमण करने के लिए निकाल गए।

ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के अजमेर पहुँचने के अनेक वर्षों उपरान्त शेख बख्तियार काकी दिल्ली पहुंचे। वे कुछ समय तक मुल्तान में भी रहे। दिल्ली में पहुंचने पर इल्तुतमिश ने उनका स्वागत किया व उनसे महल में ठहरने का अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने महल के बाहर ठहरना ही स्वीकार किया। इल्तुतमिश सप्ताह में दो बार उनके खानकाह पर जाते थे। इल्तुतमिश ने उन्हें शेख उल इस्लाम नियुक्त करना चाहा, परन्तु उन्होनें यह पद भी अस्वीकार कर दिया। वे अजमेर में बसना चाहते थे पर ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने उनसे वहीं रहने के लिए कहा। शेख कुतुबुद्दीन ने अपने को प्रशासन व अमीरों से पृथक् रक्खा। वे समा (रहस्यवादी संगीत सभा) आयोजित करने के शौकीन थे। ऐसी सभा में उन्होंने शेख अली सीजी को भी आमन्त्रित किया। इस अवसर पर गायकों ने जो पंक्तियाँ गाकर सुनाई उससे वे आत्मविभोर होकर मूर्छित हो गए व पांचवें दिन 15 नवम्बर 1235 को परलोक सिधार गए। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के दो प्रमुख शिष्य थे– बद्रउद्दीन गजनवी और शेख फरीदउद्दीन गंजशंकर शेख बद्रउद्दीन गजनवी को दिल्ली में ख्याति प्राप्त हुई किन्तु वहां वे चिश्ती सिलसिले (सम्प्रदाय) को भली भांति संगठित न कर सके। तदुपरानत वे लाहौर चले गये। लाहौर में उन्हें दिल्ली की याद सताने लगी। उन्हें ज्ञात हुआ कि गजनी, जहां उनके माता–पिता रहते थे, पर मंगोलों ने आक्रमण कर उन्हें मार डाला है। इस घटना ने उन्हें रहस्यवादी व सन्यासी बना दिया। चिश्ती सम्प्रदाय के सिद्धान्तों

का पालन न करते हुए उन्होंने मलिक निजामुद्दीन खरीतादार की कृपा स्वीकार की। मलिक निजामुद्दीन ने उनके लिए खानकाह बनवाया और उनका खर्च उठाया। कुछ समय उपरान्त मलिक निजामुद्दीन खरीतादार को जेल हो गई, जिससे शेख बद्रद्दीन गजनवी की खानकाह को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। उन्होने शेख फरीद गंजशकर से सहायता मांगी जो उन्हें मिल न सकी। चिश्ती सम्प्रदाय के सभी सिद्धान्तो का अनुसरण न करने पर भी वे दिल्ली में अत्यधिक लोकप्रिय थे। वे एक महान् कवि, उपदेशक, विचारक व सन्त थे। परन्तु वे अपने सिलसिले को बढ़ा न सके। 13वीं शताब्दी में चिश्ती सन्तों में सबसे महान् सूफी सन्त शेख फरीदउद्दीन गंजशकर थे (1175–1265 ई0) उन्होंने चिश्ती सम्प्रदाय को संगठित करके चिश्ती विचारधारा का प्रचार किया। उनका जन्म मुल्तान के समीप कहलवाल नामक गांव में, काजी के परिवार में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन में वे रहस्यवाद की ओर उन्मुख हुए। मुल्तान में एक मदरसे से संलग्न मस्जिद में उनकी भेंट शेख बख्तियार काकी से हुई। जिन्होंने उन्हें चिश्ती सम्प्रदाय मे दीक्षित कर लिया। सूफी रहस्यवाद का अध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने सूफियों का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। मुहम्मद गौस के अनुसार भारत की सभी शेखों में निष्ठा एवम् साधना में उनके समान कोई भी न था। सम्भवतः वे भारत में प्रथम सूफी थे जो कि सबसे कठिन साधना चिल्ला–ए–माकूस किया करते थे। शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के चरणों

में आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वे हांसी में रहने लगे। बाद में वे अजोधन में रहने लगे। उन्होंने अजोधन में चिश्ती सिलसिले का महान् केन्द्र बना दिया। बाबा फरीद गंजशकर का नाम कैसे पड़ा। यह कहा जाता है कि उनकी माँ उन्हें नमाज पढ़ने के लिए प्रेरित करने के लिए उनकी नमाज की चटाई के नीचे कुछ मिठाई रख दिया करती थी। एक बार उनकी मां ऐसा करना भूल गई, परन्तु जब वे नमाज पढ़कर उठे तब उन्हें चटाई के नीचे मिठाई मिली। तभी से वे गंजशकर के उपनाम से सुविख्यात हुए। बाबा फरीद चमत्कार करना जानते थे। वे अपने अनुयायियों का कष्ट चमत्कार द्वारा दूर किया करते थे। इसलिए उनके अनुयायियों ने उन्हें सैकड़ों उपनामों से सम्बोधित करना प्रारम्भ किया।[9]

बाबा फरीद ने प्रौढ़ावस्था में विवाह किया। उन्होंने सर्वप्रथम बलबन की पुत्री राजकुमारी हुजैरा से विवाह किया। उसके बाद उन्होंने दो अन्य विवाह किए। यह दोनों विवाह उन्होंने अपनी पत्नी की दासियों से किए थे। यह कहा जाता है कि बलबन ने अपनी पुत्री के कष्टप्रद जीवन को बचाने के लिए उसके लिए महल बनवाया परन्तु उसने अपने पति के मार्ग चिन्ह पर ही चलना पसन्द किया।[10]

मध्य काल में धार्मिक भ्रष्टाचार पर यदि विचार करें तो यह शासक की अपनी तानाशाही अथवा राजनैतिक कारण अथवा एक वर्ग विशेष को प्रसन्न करने का उपाय भी कहा जा सकता है। जहाँ तक अकबर की धार्मिक नीति का प्रश्न

है यह सदा मतभेद का कारण बना रहा। के० ए० निजामी के अनुसार पैगम्बर शासक का रूतबा प्राप्त करने की चेष्टा अकबर द्वारा की गयी थी। उन्होनें अकबर के इस कार्य की घोर निन्दा की। अकबर ने प्रभु सत्ता के एक ऐसे सिद्धान्त की स्थापना का प्रयास किया जिसमें भारत की धार्मिक एवं जातिगत विषमताओं का ध्यामन रखा गया था। जहाँ तक धार्मिक भ्रष्टाचार का प्रश्न है सम्पूर्ण मध्य काल इससे कभी अछूता नहीं रहा।

अनेकों उदाहरण से इतिहास भरा पड़ा हुआ है। युद्ध में मारे गये बन्दी व्यक्तियों के परिवार को दास के रूप में प्रयोग किया जाता था एवं उन्हें यातनायें दी जाती थी, उनके परिवार की महिलाएं हरम की कामपिपासा की वस्तु मानी जाती थी। जो हिन्दू बहुसंख्यक समाज के धार्मिक रीति–रिवाज के विपरीत था तथा घोर निन्दनीय अपराध की श्रेणी में माना जाता था।

अबुल फज़ल का कहना था कि तीर्थयात्रियों पर लगाया जाने वाला कर हिन्दुओं के लिए असहाय तथा धार्मिक भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है। 1568 में चित्तौड़ के विजय के बाद जारी किए जाने वाले फतहनामा में चित्तौड़ की विजय को काफिरों के प्रति जेहाद कहा गया है। 1569 में इस्फहान के मिर्जा मुकीम तथा काश्मीर के मीर याकूब को उल्मा की सम्मति से शिया–सुन्नी के आधार पर मौत की सजा दी गयी। अकबर ने बाद में स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया कि पहले मैं अपने धर्म को न मानने वाले लोगों का धार्मिक उत्पीड़न किया करता था और

इसी को इस्लाम समझता था। सुन्नी उल्मा के पक्ष में विभिन्न वर्गों को सक्रिय करने का कार्य अबुल फजल का था। वह बहुत सी विषयों पर उल्मा की संकीर्णता तथा अज्ञान का भण्डा फोड़ता था। इबादत खाने में होने वाले वाद–विवाद ने अकबर के धार्मिक विचारों के विकास में गहरी भूमिका निभायी। उल्मा वर्ग में हदीस की व्याख्या को लेकर ही मतभेद नहीं था वरन् कुरान के आयतों की व्याख्या के संबंध में भी उनके विचारों में समानता नहीं थी। इस बात पर अकबर आश्चर्य प्रकट करता था। उसका मत था कि यदि पैगम्बर ने कुरान की टीका लिख दी होती तो समय–समय पर उसके व्याख्या से उत्पन्न विसंगतियों से बचा जा सकता था। दूसरे धर्म के मानने वालों के प्रति उल्मा के तिरस्कार पूर्ण व्यवहार पर भी अकबर को कष्ट होता था। शेख अब्दुल नवी की अकबर ने 1561–62 में सदर उस सद्र के पद पर नियुक्ति की। इस पद पर होने के कारण सभी धार्मिक अनुदानों के विषय में उसका निर्णय सर्वोपरि था। 1575–76 में एक आदेश जारी किया गया जिसके अनुसार मदद–ए–मआश, वक्फ तथा अदरार फरमानों को जारी करने का अधिकार सदर उस सद्र के हस्ताक्षर द्वारा ही सम्भव था। जिसका सीधा अर्थ यह था कि अनुदान लेने वाले को राजधानी आना पड़ता था तथा अधिकारी से मिलना जरूरी हो गया था और वे अपने दावों का निपटारा रिश्वत देकर और प्रभावशाली संबंध होने पर ही प्राप्त कर सकते थे। अब्दुल नबी द्वारा एक ब्राह्मण को पैगम्बर का तिरस्कार करने के अपराध में मृत्यु दण्ड दिए जाने

की घटना ने बादशाह तथा धर्म शास्त्रियों के मध्य तनाव को और भी तीव्र बना दिया था। अकबर ने मृत्यु दण्ड का विरोध नहीं किया जिससे यह स्पष्ट होता है कि उलेमा सदैव सत्ता को चुनौती देते रहते थे। महजर नामक दस्तावेज जारी करने की प्रेरणा मुबारक शाह और उसके पुत्र फैजी व अबुल फजल द्वारा दी गयी थी। उल्मा ने इन पर महदवी व शिया होने का आरोप लगाकर उनका उत्पीड़न किया था। वे उल्मा की शक्ति में कटौती करने का मौका पाकर खुश थे। एक अन्य उदाहरण में बदायूँनी के अनुसार प्रमुख उल्मा को मजहर पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया। इसमें केवल शेख मुबारक ही अपवाद था जिसने बिना किसी विरोध के राजी खुशी से हस्ताक्षर कर दिए थे।[11]

आई.एच. कुरेशी महजर के संबंध में अकबर की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार यह एक कुटिल दस्तावेज था जिसने अकबर को परम्परागत इस्लाम से विरोध करने तथा धर्म विरोधियों के पक्ष में मध्यस्थता करने का अवसर प्रदान किया। अकबर द्वारा महजर में इस पद संज्ञा का प्रयोग (अमीर–उल–मोमीनीन) इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि वह अपने आप को प्रारम्भिक खलीफाओं के समान सर्वोच्च आध्यात्मिक व भौतिक सत्ता प्राप्त करना चाहता था। जहाँगीर ने भी अकबर के समान भी धार्मिक नीति का पालन किया। इस्लाम से धर्म परिवर्तन की छूट दे दी। धार्मिक मतवाद संबंधी उत्पीड़न को समाप्त कर दिया और गैर इस्लामी धार्मिक उत्सवों को मनाने की सार्वजनिक रूप से अनुमति प्रदान कर

दी। तथापि अनेकों भ्रष्टाचार के उदाहरण जो धार्मिक भ्रष्टाचार की श्रेणी में आते हैं, जहाँगीर के शासनकाल में भी विद्यमान रहे। अनेक लोगों ने इसाई धर्म को स्वीकार करना शुरू कर दिया था जिसका कारण प्रजा में गरीबी और पेट की आग थी। लोगों ने आर्थिक कारणों से इसाई धर्म की ओर अपना रूझान किया। जब उन्हें लाभ मिलना बन्द हो गया तो उन्होनें उसे पुनः त्याग दिया। विलियम रो ने इसकी स्पष्ट रूप से चर्चा की है। विलिम्स फिंच के अनुसार धर्मान्तरण का सबसे सनसनीखेज उदाहरण दानियाल के बेटों और जहाँगीर के पोतों का सार्वजनिक बपतिसमा था जो 1610 में सम्पन्न हुआ। इस धर्मान्तरण का उद्देश्य कुछ भी रहा हो परन्तु इससे यह स्पष्ट हो गया कि यह एक छलकपट का मामला था क्योंकि 1611 में उन राजकुमारों ने इसाई धर्म को त्याग कर पुनः इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया था। सिक्खों के तत्कालीन गुरू अर्जुन देव से जहाँगीर नाराज हो गया था। कारण यह था कि अनेकों मुसलमान ने इस्लाम धर्म त्याग कर गुरू को अपना धर्म गुरू स्वीकार कर लिया था। जहाँगीर ने उनके सामने दो ही शर्ते रखी। या तो गुरू मुसलमान बन जाएं अथवा दूसरी अपनी धार्मिक दुकानदारी बन्द कर दें। संयोगवश इसी समय खुसरों की बगावत के कारण गुरू को मौत की सजा सुनाई गयी और कारागार में उनकी मृत्यु हो गयी। सर्वाधिक रूष्टता शासन और शासक की जैन धर्म के मानने वालों के विरूद्ध सदा रही। ऐसा माना जाता था कि हिन्दुओं में जैन समुदाय अधिक परेशानियाँ पैदा करने

वाले हैं। इसलिए सभी जैनियों को बिना इस बात पर ध्यान दिए कि उनका राजनीतिक झुकाव किस ओर है, उन्हें दण्डित किया गया। इस उत्पीड़न के पीछे शाहजहाँ का धार्मिक कट्टरपन स्पष्ट रूप से झलकता था। जहाँगीर अपने आप को सच्चे धर्म के संरक्षक की भूमिका पर खरा देखना चाहता था। लाहौर परगने में एक धार्मिक नेता शेख इब्राहिम और एक शिया काजीनूरउल्लाह दण्डित हुए। इस प्रकार के उत्पीड़न का सबसे ज्वलंत उदाहरण शेख अहमद सरहिन्दी का है जो अपने धार्मिक विचारों के कारण दण्डित हुआ। शाहजहाँ के काल में भी धार्मिक कट्टरपन की झलक सदा देखने को मिलती रही है। शाहजहाँ का गैर मुसलमानों के प्रति रवैया हिन्दू मंदिरों को अपवित्र करना और उन्हें ध्वस्त करने की प्रथा ने शाहजहाँ के काल में एक व्यवस्थित रूप धारण कर लिया था। हलांकि इसकी शुरूआत जहाँगीर के शासनकाल में हो गयी थी। अब्दुल हमीर लाहौरी के अनुसार बादशाह ने सबसे पहले 1633 में अपने पूरे साम्राज्य में नव–निर्मित मंदिरों को गिरा देने का हुक्मनामा जारी किया। मात्र वाराणसी में 72 मंदिरों को ध्वस्त किया गया। इस आदेश के पश्चात पूरे साम्राज्य में नए मंदिरों का निर्माण, पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार का काम पूरी तरह प्रतिबंधित कर दिया था। बर्नियर ने कश्मीर के मंदिर को गिराने की बात लिखी है।[12]

जहाँ तक धार्मिक वैवाहिक संबंधों की बात है, यदि कोई मुसलमान लड़की किसी हिन्दू पुरूष से नहीं व्याही जा सकती थी और यदि ऐसा करने का साहस

किया गया तो लड़की को हिन्दू के घर से वापस बुला लिया जाता था। गौ हत्या का निषेध संबंधी आदेश जो अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में दिए गये थे, शाहजहाँ ने वापस ले लिए। कभी यदि रियायत दी भी गयी तो हिन्दुओं को इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती थी। अनेकों विसंगतियों, भ्रष्टाचार और अनैतिकता का बोलवाला औरंगजेब के समय में फलीभूत रहा। जजिया कर को पुनः लगाया गया। औरंगजेब ने धर्मान्धता से प्रेरित होकर कट्टर उपाय भी अपनाये। भारत में इस्लामी राज्य स्थापित करने की कपटपूर्ण कोशिश की। इस प्रयास का उद्देश्य प्रजा का इस्लामीकरण और धर्म विरोधियों का अन्त करना था। औरंगजेब ने अपने सहयोगियों को एकत्रित करने के लिए धर्मयुद्ध जैसी कपटपूर्ण नीति अपनाई। उसने यह बात फैला दी थी कि चाहे बादशाह शाहजहाँ जिन्दा हों अथवा मर गये हों दारा के अपधर्मी हरकतों से इस्लामी कानून को बचाना जरूरी है। बादशाह अब यदि जिन्दा भी हों तो भी मूर्ति पूजकों के प्रशंसक दारा की दासता और अत्याचारों से मुक्त करा देंगे। ऐसा ढोंग रचकर औरंगजेब ने अपनी घटिया नैतिक भ्रष्टाचार का परिचय दिया था। एक इतिहासकार ने इस कपटपूर्ण नीति को केवल हिन्दू और मुसलमान के बीच ही नहीं बल्कि शिया और सुन्नी के बीच की लड़ाई भी वताई है। औरंगजेब ने अपने नाम का 'खुतबा' पढ़वाया और धर्म के प्रति अपना झुकाव भी प्रकट किया। उसके नाम का खुतबा पढ़े जाने के कारण वह उल्मा की प्रतिज्ञा से बंध गया और उसने उनकी सहायता पाने की व्यग्रता

प्रदर्शित की। अनेक प्रतिबन्ध लागू किए। सार्वजनिक समारोज नवरोज पर पाबंदी लगाई। गुरूवार की रात्रि को पीरों की मजार और अन्य कब्रों पर दिए जलाने की मनाही कर दी गयी। शासकों अधिपतियों का जुल्म जनता पर औरंगजेब के जमाने में सर्वाधिक रहा। सामान्य जनता को विभिन्न नारें के माध्यम से उनकी धार्मिक भावनाओं को भड़काया जाता था। इस्लाम में अनास्था के बहाने दारा की हत्या कर दिये जाने का मामला एक ऐसे रास्ते की शुरूआत रही है जिस पर चलकर औरंगजेब में अपने कट्टरपंथी होने का सबूत पेश किया था। उसके पास अपनी घोषित मान्यताओं से चिपके रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। अनेक मंदिरों का गिराया जाना जिनमें काशी का विश्वनाथ मंदिर, गोपीनाथ मंदिर, मथुरा का केशवराय मंदिर इन सभी को ध्वस्त विरोपित या भ्रष्ट करने का आदेश औरंगजेब ने दिया था। मंदिरों को गिराये जाने का कार्य हिन्दुओं के खिलाफ प्रतिशोध की भावना को प्रकट करना भी था। अनेकों चुंगिया एवं कर लगाये गये। हिन्दुओं से मुसलमानों की तुलना में दुगने कर वसूल किए गये।[13]

दकनी शासकों की धार्मिक भावना को उभारा गया और उनके सेवकों को आर्थिक व भौतिक प्रलोभन दिए गये। औरंगजेब ने स्पष्ट करना चाहा कि वही इस्लाम का संरक्षक है और उसने अधिक से अधिक धर्मान्तरण भी अपने समय में करवाये। उत्तरी भारत में स्थित मारवाड़ को दारूल हर्ब की संज्ञा दी गयी। वहाँ के प्राचीन मंदिरों को ध्वस्त किया गया। दक्षिण के मंदिर को धराशायी करने का

काम 1698 में ही शुरू हो गया था।[14]

औरंगजेब हिन्दुओं को बलपूर्वक धर्मान्तरण करवाने का पक्षपाती था। धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति प्रायः जमींदार एवं सेवक तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारी हुआ करते थे क्योंकि वह अपने साम्राज्य के अन्तर्गत कार्यरत प्रत्येक इकाई के सदस्यों को मुस्लिम बनाना चाहता था।[15]

भ्रष्टाचार के एक उदाहरण में स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है कि कट्टरपंथी मुल्ला मौलवी वर्ग के लिए जजिया रोजगार का एक अतिरिक्त साधन बन गया था। इसके जरिए उन्हें इस्लाम में विश्वास न करने वालों को सताने, नीचा दिखाने व प्रताड़ित करने का अवसर मिल गया था। यह जोर जबरदस्ती रूपया ऐंठने और भ्रष्टाचार फैलाने का माध्यम भी बन गया। इस तरह काजियों ने लाखों रूपये कमाये और बड़ी धांधली मचाई। इस कर को एकत्र करने के लिए अधिकारी नियुक्त किए गये। कहीं–कहीं फौज की भी मदद ली गयी। औरंगजेब काजियों और स्थानीय अधिकारियों के जुल्म और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने में पूर्णतः असफल रहा। उनके जुल्म और भ्रष्टाचार पर कभी ध्यान नहीं दिया। अमीरों की ओर से भी जजिया के खिलाफ आवाज उठी। ज्यादातर खिलाफत बंजारों और व्यापारियों की तरफ से उठी। औरंगजेब ने यह भी घोषणा की कि मराठों के साथ धर्मयुद्ध में बनाये गये बंदी यदि इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते हैं तो उन्हें माफी दे दी जायेगी। जहाँगीर के शासनकाल में धार्मिक भ्रष्टता के

उदाहरण पर गौर करने वाली बात है जिसमें शेख अहमद को हिरासत में ले लिया गया था। उन पर आरोप था कि वे पाखंडी थे और दावा करते थे कि आध्यात्मिक क्षेत्र में वह प्रथम तीन खलीफाओं से भी आगे हैं। इन उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य और भी कई उदाहरण हैं जो मध्यकाल की भ्रष्ट व्यवस्था का एवं गलत नीतियों का बयान करते हैं। मुग़ल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब जिम्मेदार था या नहीं यह स्पष्ट रूप से कहना सदा विवाद का विषय रहा है। परन्तु उसने अपनी पूरी कोशिश मुगल साम्राज्य और मध्य काल के शासन के लगभग 500 वर्षो के इतिहास को बचाने की पूरी कोशिश की।[16]

कुछ अन्य उदाहरण पर भी गौर करना आवश्यक होगा। जैसे कि शासन की दीर्घकालीन हितों के लिए आवश्यकता थी कि किसानों पर जुल्म न ढाया जाय। उनके पलायन को रोकने के विचार किए जाय, परन्तु जागीरदार सदैव किसानों का शोषण करते रहे और धन उगाही में लगे रहे। अनेक विद्रोह भी औरंगजेब के जमाने में ही हुए जिनको दमन करने में वह पूरी तरह असफल रहा। 1669 में मथुरा के जाटों द्वारा तिलपत के जमींनदार गोकुल के द्वारा किया गया विद्रोह इतना प्रभावशाली रहा कि वह शीघ्र ही आस– पास के क्षेत्रों में फैल गया। युद्ध में विद्रोहियों ने मथुरा के मुगल फौजदार अब्दुल नवी को हराकर उसकी हत्या कर दी।[17]

औरंगजेब की शासनकाल में उसकी दक्षिण युद्ध में व्यस्तता और उसके

मृत्यु के बाद की नाजुक राजनैतिक परीस्थितियों में जाटों ने पूरी तरह मुगलिया सल्तनत को चोट पहुँचाने का प्रयास किया। रैयती गाँव के किसान अपने गांव को जमींदारी बनाने का विरोध करते थे, क्योंकि इससे उनपर कई भार पड़ते थे। पहले किसान अपनी शिकायत के लिए ऊँचे अधिकारियों के पास जाते थे और यदि मुकदमा हार जाते तो विद्रोह करते थे। किसानों और भूमियों के द्वारा अनेक गड़बड़ियाँ फैली हुई थी। किसानों ने जाट जमींदारों के साथ लूटमार करने में जमीनदार का साथ दिया। बुण्देलखण्ड के ओरछा में मधुकर शाह के बाद उसका बड़ा लड़का रामशाह गद्दी पर बैठा। रामशाह के छोटे महत्वाकांक्षी भाई वीर सिंह देव जो बारौनी (दतिया के नजदीक) का जागीरदार था को सलीम का समर्थन तथा अबुल फजल की 1602 में हत्या के कारण कृतज्ञता हासिल थी। मुगलिया सल्तनत के विरूद्ध सतनामी विद्रोह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है। समुदाय के उग्रवादी, नियम विरूद्ध, दूषित व अशुद्ध होने के कारण एक इतिहासकार ने निन्दा की है। अपने पंथ के रिवाजों के अन्तर्गत वे मुसलमान और हिन्दू को अलग नहीं करते और सुअर का मांस व अन्य अरुचिकर पदार्थ खाते थे। वे सभी विद्रोहों में शामिल होते हैं और अधिकारियों के प्रति आज्ञाकारी नहीं थे।[18]

मुगलों के खिलाफ धर्मयुद्ध में सिक्खों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। शासन की बर्बरतापूर्वक नीति के कारण सिख पंथ उपजा और मजबूत हुआ। मुगलों के खिलाफ सिक्खों का विद्रोह 1675 में उस समय हुआ जब औरंगजेब ने

गुरू तेगबहादुर को प्राणदण्ड दिए जाने की घोषणा की। जहाँगीर ने गुरू हरगोविन्द सिंह को बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में जुर्माने की अदायगी के लिए रखा था। उत्तराधिकार के नियम के अभाव में सत्ता सम्हालने का फैसला मुगलकाल में सदा तलवार के बल पर ही होता था। अकबर के मृत्यु के बाद जहाँगीर उत्तराधिकारी बना। उसने अपने पुत्र खुसरू को बन्दी बनाना चाहा वह आगरा से भाग निकला और शाही सेना द्वारा उसका पींछा निरंतर किया जाता रहा। खुसरू ने अपना कदम अफगानिस्तान की तरफ बढ़ाया। रास्ते में उन्होनें तरन तारन में गुरू अर्जुनदेव से भेंट की। गुरू ने खुसरू को यथा शक्ति मदद की, परन्तु वह मदद खुसरू को बचाने के लिए पर्याप्त नहीं थी। जहाँगीर के क्रोध को भड़काने के लिए यह मदद काफी थी। जहाँगीर ने गुरू पर षड्यंत्र का आरोप लगाया और उन्हें लाहौर आने के लिए सम्मन भेजा और कैद कर लिया। उन पर दो लाख रूपये का जुर्माना भी किया गया। सिक्खों के प्रति जहाँगीर का रूख, षड्यंत्र के लिए दण्ड तथा बढ़ती हुई शक्ति को कुचलने के लिए यह एक कूटनीतिक भ्रष्टाचार था।[19]

औरंगजेब की बहुचर्चित कठमुल्लावादी विचारधारा और धार्मिक कट्टारपंथ को सिक्खों की वगावत का एक प्रमुख कारण माना गया था। गुरू तेगबहादुर को मृत्यु दण्ड इसी विचारधारा का पोषक था। गुरू तेगबहादुर ने कश्मीरी पण्डितों से कहा कि वे सरकार के दबाव में न आयें और उनसे कह दें कि यदि पहले गुरू

तेगबहादुर इस्लाम कबूल कर लेते हैं तो हम भी उनका पालन करेंगे। बाद में जब वे मालवा की यात्रा पर गये आगरा के समीप उन्हें बन्दी बना लिया गया। उन्हें बादशाह के सम्मुख पेश किया गया और कहा गया कि वे चमत्कार दिखायें या इस्लाम कबूल करें अथवा मौत को गले लगा लें। इन सारे विकल्पों में गुरू ने मौत को स्वीकार किया। गुरू तेगबहादुर बहुत ही रोचक परीस्थितियों में गुरू बने थे। गुरू हर किशन ने मृत्यु से पहले उन्हें "बाकला दे बाबा" कहा। इसमें कोई संदेह नहीं कि गुरू बाकला के रूप में स्वीकृत हो गये। परन्तु कई विरोधियों ने प्रारम्भ में अड़चने पैदा किए और पाखण्ड किया। धीनामल और राना राय संकट पैदा कर रहे थे। गुरू जब अमृतसर गये तो समाधि स्थल का दरवाजा सेवकों ने बन्द कर दिया था। तब गुरू अन्तिम रूप से आनन्दपुर में बस गये। मुगलों द्वारा रामराय के उकसाने पर जो अपने आप को गुरू की गद्दी का दावा करता था, कैद कर लिए गये। गुरू के द्वारा किये गये कार्य कलाप औरंगजेब द्वारा खतरनाक प्रवृत्ति माना गया और गुरू को सजायें मौत दे दी गयी। औरंगजेब ने माना कि गुरू ने सिक्खों को संगठित करने का अपराध किया। गुरू ने नव–दीक्षतों को लड़ाकू भी वनाया। कोई भी स्वतंत्र सैन्य शक्ति जिसका विशाल सामाजिक जनाधार हो अवश्य ही तत्कालीन मुगलों को खतरे की चेतावनी देगी, ऐसा सोंचकर औरंगजेब ने गुरू के खिलाफ यह क़दम उठाया। सदियों से उत्तर–पश्चिम सीमांत मध्यकालीन शासकों के लिए समस्या का विषय रहा। 1672 में खैबर दर्रे के

अफरीदियों ने विद्रोह कर दिया जिससे मुगलों को भारी क्षति का समाना करना पड़ा। 10,000 व्यक्ति शत्रुओं के तलवार से मारे गये। लगभग 2 करोड़ मूल्य के सामान और रूपये लूटे गये। बीस हजार स्त्री और पुरूषों को बन्दी बना लिया गया और मध्य एशिया के बाजार में बेचने के लिए भेज दिया गया। ऐंसी घटनायें मध्य काल में होना अत्यन्त साधारण बात थी। जिद्दी और हठी लोगों से कर वसूलने का काम खालसा के घुड़सवार करते थे। पहाड़ी राजाओं विशेषकर भीम चन्द्र की सत्ता के लिए खालासा की यह खुली ललकार थी। गुरू गोविन्द सिंह के ऊपर आनन्दपुर खाली करने के समय धोखाघड़ी से आक्रमण किया गया था। इसी के लिए गुरू ने औरंगजेब के पास जफरनामा भेजा था।[20]

अकबर ने मुगल साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान किया था। शाहजहाँ ने उसको फैलाने का प्रयास किया। औरंगजेब ने देश की एकता को कायम करने के लिए प्रयास किया। परन्तु 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शासन की कुशलता समाप्त हो गयी। शासन व्यवस्था जो मनसबदारी तथा जागीरदारी प्रणाली पर निर्भर थी, बर्बादी का कारण बन गयी। मुगल दरबार गुटबाजों का अखाडा वन गया। सम्राट के अधिकारों पर उमरा वर्ग ने नियंत्रण कर लिया। सम्राट उनके हाथ की कठपुतली बन कर रह गये। देश का कामकाज लोभी और लाचली अमीरों के हाथ में आ गया। केन्द्रीय शासन की कमजोरी की वजह से उमरा और जमीनदार वर्ग ने देश के विभिन्न प्रान्तों में अपना राज्य कायम कर

लिया। धर्म की रक्षा के लिए सम्मान की दृष्टि से देखे जाने वाले उमरा वर्ग ने अपने भोग विलास और भौतिक सुख साधन का भरपूर इस्तेमाल किया। इसका मोह उन्हें सत्त के करीब खींचकर ले जाता था। जिससे वे नैतिक जीवन में पथभ्रष्ट हो गये थे और धर्म की आड़ में वे केवल अपनी स्वार्थ पूर्ति ही किया करते थे। सामान्य जनता या समाज की भलाई के प्रति वे सदा उदासीन रहते थे।

विलासिता के कारण मुगल सल्तनत को तथा पूरे मध्य काल को अनेकों विडम्बनाओं का सामना करना पड़ा। भोग–विलास ने शासकों को कई बार पथभ्रष्ट किया और वे सत्ता से दूर हो गये। मुगल साम्राज्य एक केन्द्रीय सत्ता के अन्तर्गत था और उसका शासन एक व्यक्ति तथा उसके सहायकों पर निर्भर रहता था। यह शासन उस समय बर्बाद हुआ जब सम्राट और उल्मा वर्ग का व्यक्तिगत जीवन ऐश आराम में गुजर गया। जवानी और शराब के नशे में शासकों को अन्धा कर दिया। वे अपने कर्त्तव्य भूल गये और शासन की स्थिति डावां–डोल हो गयी। यदुनाथ सरकार ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें शाह आलम द्वितीय के एक पत्र का उल्लेख है जो ब्रिटिश गवर्नर को लिखा गया था जिसमें प्रार्थना की गयी थी कि दो मन पटना की बढ़िया अफीम भेज दी जाय।[21] लेकिन इसके अतिरिक्त यह सिद्ध करना मुश्किल है कि कौन शासक किससे अधिक या कम अय्याश थे। अफीम, शराब या अन्य नशे की चीजें उमरा और शासक वर्ग में सदा प्रचलित रही। जहाँगीर ने शाहजहाँ को अपने सामने आदेश देकर शराब

पिलायी और आगे भी पीने को कहा। क्योंकि यह बादशाहत की निशानी है। अकबर को एक पांचहजारी मंसबदार जैनखा कोका ने दावत दी। इस अवसर पर अपने घर को सजाने के लिए उसने सजावट में कोई कमी न रखी। तीन तालाबों को गुलाब, जाफरान, अर्गजे विभिन्न खुशबूओं से भरवाया था। हजार से ज्यादा वेश्याओं को उनमें उतार दिया। शक्कर मिले हुए दूध की नहरें बहा दी। पानी की बजाय चौक में गुलाब जल छिड़का गया। इसी क्रम में यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि इस अमीर की मौत शराब की अधिकता से हुई। अकबर के काल में इस तरह की विलासिता किसी भी काल से कम नहीं थी।[22]

शाहबेग खाँ अरगुन एक जहाँगीरी मंसबदार का उल्लेख करता है। जो हर समय नशे में डूबा रहता था और कहता था कि सुराही नजर के सामने रहे चाहे दुनिया रहे या न रहे। भंग, अफीम और कोकनार शराब में मिलाकर पीता था। इस मंसबदार का मंसब पॉचहजारी बताया गया है। इतना शराबी होते हुए भी शाहबेग इतने ऊँचे मंसब पर पहुँचा कि इसको शराब का अच्छा प्रभाव कहा जाय या बुरा। वस्तुतः यह विलासितापूर्ण शासन की पुष्टि का प्रमाण प्रस्तुत करता है। शाहजहाँ के एक वडे अमीर शाह नवाज खाँ सफवी को गाने का इतना शौक था कि उसकी सरकार से अधिक गवैये किसी के पास नहीं थे। उपरोक्त थोड़े से उदाहरणों से ही यह स्पष्ट है कि ऐश–आराम, भोग–विलास, सोलहवीं–सत्रहवीं सदी में पूरी तरह शबाब पर था। आश्चर्य है कि खराबियां ऐसे समय पर प्रारम्भ हुई सल्तनत

का बुलन्द स्वरूप उस समय ध्वस्त हुआ जब इन सभी क्रिया–कलापों पर प्रतिबन्ध का प्रयास किया गया। औरंगजेब अन्य पूर्ववर्ती शासकों में सर्वाधिक कट्टरपन व नैतिकता का पालन करता था। लेकिन साम्राज्य पतन की स्थिति को देखकर उसने मृत्यु से पहले कहा कि सारे झगड़े की जड़ मैं ही हूँ। मुसलमान बादशाहों में महमूद गज़नवी के जमाने से ही जेहाद का नारा लगाया जाता था और अन्त तक औरंगजेब के जमाने तक इसे धर्मयुद्ध के नाम से ही गैर मुस्लिमों के साथ इस्तेमाल किया जाता रहा है। शासकों और उल्माओं के बीच एक खास तरह का तनाव सदा बना रहता था। उल्मा चाहते थे कि शासक इस्लाम के सिद्धान्तों के रोशनी में शासन को चलायें। चूँकि वे इस्लामी कानून के पंडित थे इसलिए अपना कानून शासक पर थोपना चाहते थे और अपनी जबरदस्ती लागू करना चाहते थे। परन्तु ऐसा शासन के संबंध में सम्भव नहीं हो सकता था। क्योंकि शासन के लिए धार्मिक कानून का इस्तेमाल जरूरत से ज्यादा सत्ता के लिए एक अहितकर होता था।[23]

औरंगजेब शाहजहाँ के बेटों में सर्वाधिक कुशल नेतृत्व वाला था। शाहजहाँ को तख्त से हटाकर हिन्दुस्तान के शहंशाह बनने की योजना, दूसरे शहजादों के साथ मिलकर दारा के खिलाफ षड्यंत्र ये उसकी कूटनीतिक भ्रष्टता और राजनीति का स्वरूप था। उसने दारा पर यह भी आरोप लगाया कि बादशाह को अपने कब्जे में किये हुए है और उससे अपनी मर्जी से काम कराता है। क्योंकि

शाहजहाँ बूढ़ा होने के कारण शासन के कामों को नहीं देख सकता। शामूगढ़ की लड़ाई से पहले औरगंजेब के पत्रों से यह पूरी तरह जाहिर होता है कि उसने दारा के राजनीतिक कारणों से मुखाफलत की थी। औरंगजेब के सामने दूसरा बड़ा आरोप यह था कि उसने बगावत की और अपने बाप के साथ बुरे व्यवहार किया जिसको वह सदा जायज सिद्ध करने का प्रयास किया करता था। औरंगजेब हमेशा महसूस किया करता था कि उसकी हैसियत को खतरा रहता है। शाहजहाँ की कैद में मौजूदगी उसकी एक बड़ी उलझन थी। अगर ऐसे समय अपने दावों को खोखला पन जाहिर करता तो उसकी बगावत का दण्ड उसे मिल सकता था। शाहजहाँ को तख्त पर वापस लाया जा सकता था। इन सभी बातों को दबाने के लिए औरंगजेब को एक नये आधार की जरूरत महसूस हुई। अपने भाईयों के साथ की गई बदसलूकी और बगावत को उचित ठहराने के लिए उसने कट्टरपन का घिनौना स्वरूप पेश किया। इस खतरनाक समय पर उसने धर्म की आड़ ली।[24]

औरंगजेब कहता था कि दारा को खत्म कर देना इस्लाम को मानने वालों के लिए बहुत ही जरूरी है क्योंकि दारा के विचार शरीयत के खिलाफ हैं। 1666 के बाद औरंगजेब ने कछ प्रभावशाली कदम उठाये जो गैर मुस्लिमों के बिल्कुल खिलाफ थे। उसकी धार्मिक नीति में परिवर्तन निश्चित रूप से नजर आता था। इस जमाने में बर्बरता पूर्वक मंदिरों को गिराया गया। जजिया लगाया गया, गैर

मुसलमानों पर तीर्थ यात्रा कर लगाया गया। उन पर आयात कर बढ़ाया गया।[25]

अन्त में यही कहा जा सकता है कि जो वर्ग सरकार की सेवा के लिए बना था वही वर्ग शासक के कमजोर होने पर सत्ता के लिए चुनौती और बोझ बन गया। राज्य के अधिकार हड़प बैठा। मनसबदारी प्रणाली में जो अन्तर्विरोध हुआ वह पूरी तरह उभर कर सामने आया। जिस प्रणाली पर शासन कायम था उसी प्रणाली के चलते शासन बर्बाद हो गया।

उल्माओं का मुख्य कार्य धार्मिक शिक्षा प्रदान करना और शासन को शरीयत के मुताबिक चलाने की सलाह देना था, परन्तु उन्होनें अपने भौतिक सुख की चाह में अनेक अनैतिक कार्यों को कराने की इजाजत शासक को तथा अन्य वर्गों को प्रदान की। इसमें निश्चित रूप से शरीयत की व्याख्या की नहीं अपितु उनकी निजी स्वार्थ की चाह थी।

सल्तनत काल का विशेष कृपापात्र और सहयोगी उल्मा वर्ग था और उल्मा वर्ग राज्य के प्रत्येक अंश को व्यापक रूप से प्रभावित करता था। उल्माओं ने नियमतः मुस्लिम कानून तर्कशास्त्र अरब और सामान्य रूप से इस्लाम के धार्मिक साहित्य तफसीर हदीस कलाम इत्यादि का व्यापक प्रशिक्षण लिया था। हालांकि कुरान सामान्यतः उनकी स्थिति के बारे में यह जोर देती है कि वे ऐसे अलग वर्ग के हैं जो लोगों को सन्मार्ग पर लगाते हैं तथा उनके लिये कुरान में कोई प्राविधान नहीं किया गया है। शीघ्र ही लोगों के बीच मिथ्यापरम्परायें प्रचलित होने

लगी। कहा जाने लगा कि पैग़म्बर ने कहा कि उल्मा का सम्मान करो क्योंकि वे पैग़म्बर के उत्तराधिकारी हैं जो उनका सम्मान करता है वह इस्लाम के पैग़म्बर और अल्लाह का सम्मान करता है।

हिन्दुस्तान में मुस्लिम समाज के विकास की विशेष परिस्थितियों में यह आशा करना स्वाभाविक था कि उल्मा अनुचित प्रसिद्ध प्राप्त कर लेगा। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के पहले किसी भी शासक ने उल्मा की बढ़ती हुई शक्ति पर अंकुश लगाने का साहस नहीं था। सुल्तान अलाउद्दीन ने सल्तनत के अन्तर्गत उल्मा के कार्यों की परभिाषा करने और उनके सारे कार्यकाल केवल निध ोरित सीमाओं के अन्तर्गत सीमित रखने के लिये उन्हें बाध्य करना आवश्यक समझा। ये सीमायें इस प्रकार थीं – न्यायिक मामले में निर्णय देना और युद्ध धार्मिक मामलों में मध्ययस्थ का कार्य करना अन्य सारे मामले उनके क्षेत्र से बाहर रखे गये थे। लेकिन सारी वास्तविक शक्ति सुल्तान के हाथ में थी। यद्यपि वह यदा कदा सुन्नियों को अनुग्रहीत कर देता था। वह परिस्थिति की मांग के अनुसार बड़ी कठोरता से शासन करता था और धार्मिक बातों का उसके सम्मुख कोई स्थान नहीं था। मोहम्मद तुगलक राज्य को धर्म निरपेक्ष बनाने में एक कदम आगे बढ़ना चाहता था। उसे उल्मा को बिलकुल उसी दर्जे पर रखा जिस पर राज्य के अन्य कर्मचारियों को रखा गया था और वैसा ही उनसे व्यवहार भी किया। एक बार सिन्ध के कुछ धर्म शास्त्री सरकारी निधि का खयानत करने के

दोषी ठहराये गये और कठोरता से दण्डित किये गये थे।

फिरोज तुगलक को आगमन के साथ उल्माओं के प्रभाव में कुछ वृद्धि होने लगी और वे राजकीय कार्यों और नीतियों में भी हस्तक्षेप करने लगे। धर्मशास्त्रियों ने मोहम्मद तुगलक की बहुसंख्यक असफलताओं का लाभ उठाया और उसके उत्तराधिकारी को राज्य की नीति के मामलों में अपनी सलाह मानने के लिये उकसाया अनेक कानूनी पुस्तकों की रचना की गयी। धार्मिक विद्यालयों और संस्थाओं को एक नवीन प्रोत्साहन दिया गया और तैमूरी आक्रमण के समय तक उल्माओं ने अपनी पूर्व स्थिति और प्रभाव को पुनः हासिल कर लिया था किन्तु इतना संगठित था कि अपेक्षाकृत कम महत्व के कुछ मामलों में धार्मिक वर्ग का प्रभाव नगण्य था। अफगानों ने सत्ता सम्पन्न होने पर उल्मा से सम्मानपूर्ण व्यवहार किया किन्तु प्रशासन में उनकी किसी भी प्रभावकारी आवाज को प्रवेश नहीं करने दिया। इसके विपरीत उन्होंने धर्मशास्त्रियों के धार्मिक प्रभाव का प्रयोग अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि उल्मा वर्ग ने मुसलमानों को सदाचार और पवित्रता का मार्ग दिखाने का कार्य त्याग दिया जैसा कि सुल्तान बलबन की शिकायत थी कि समग्र उल्मावर्ग में सत्यता और साहस की कमी है। बुगरा खां को यह जानकर दुख हुआ कि गैर इस्लामी और अनिश्वरवादी धर्मशास्त्रियों ने उसके पुत्र

सुल्तान मुईज्जुद्दीन कैकुबाद को रमजान के अनिवार्य उपवास का पालन करने से विमुख कर दिया और केवल अभिशप्त स्वर्ण के लोभ के कारण उन्होंने कुरान के आदेशों को जान बूझकर तोड़ मरोड़ कर दिया। उसने अपने पुत्र को इन झूठे उल्माओं का विश्वास न करने की चेतावनी दी और धर्मशास्त्रियों से स्वयं को परे रखने के लिये कहा। इन उल्माओं को उसने धूर्त लोभी कहकर सम्बोधित किया जिनकी सबसे प्रिय वस्तु परलोक नहीं इहलोक था। इसके विपरीत बुगरा खां अपने पुत्र को उनकी संगति करने की सलाह दी जिन्होंने संसार त्याग किया हैं। मोहम्मद तुगलक के भी विचार इसी प्रकार के थे। उसके अनुसार उसके समय में उल्मा एकदम अधार्मिक थे वे सत्य को छिपाने के लिये कुख्यात थे और धन के प्रति उनके लाभ ने उन्हें दुराचारी और नास्तिक बना दिया था वे साधारण स्वार्थ सिद्ध करने वालों की स्थिति मे उतर आये थे। एक तरह से इस्लाम का मान और धार्मिक एकनिष्ठ पृथ्वी से उठ गयी थी। अपने समय का प्रख्यात इतिहासकार अमीर खुसरो कहता है कि काजी या वे उल्मा जो न्यायिक पद पर थे मुस्लिम कानून के सिद्धान्तों से एकदम अनभिज्ञ है और वे राज्य के किसी भी उत्तरदायित्वपूर्ण पद के लिये अयोग्य हैं वे न तो विद्वान थे न सदाचारी ही, शासक के अत्याचारी होने पर उल्मा उसे अवश्य सहयोग देते थे। व्यक्तिगत जीवन में वे धार्मिक आदेशों की पूर्णतः उपेक्षा करते थे और पाप करने और इस्लाम के नियमों का उल्लंघन करने से नहीं हिचकते थे। अमीर खुसरो के अनुसार एक

वर्ग के रूप में धर्मशास्त्रियों की एक मात्र विशेषता थी उनका ढोंग आडम्बर और अहंकार। वह सारी स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार रखता है कि उल्मा का सम्मान केवल परम्परा पर आधारित था और यदि वास्तविक सदगुण ही सामाजिक सम्मान का मापदण्ड हो तो बेरोजगारी पुरोहिती से हजार गुनी श्रेष्ठ हों यहां तक कि समकालीन इतिहासकार बरनी स्वयं यह कहता है कि अपने वर्ग के अन्य लोगों के साथ स्वयं उसने शासन की इच्छाओं को पूरा करने के उद्देश्य से जानबूझकर कुरान की आयतों के अर्थ की खींचतान करके इस्लाम के धार्मिक आदेशों का उल्लंघन करने में सुल्तान की क्रियात्मक रूप से सहायता की थी। पश्चाताप करते हुये बरनी कहता है कि मैं नहीं जानता हूँ कि अन्यों के ऊपर क्या बीतेगी। किन्तु वृद्धावस्था में मेरा वर्तमान दुर्भाग्य और क्लेश मेरी कथन और करनी का फल है।

उल्मा के अतिरिक्त सैयदों का भी एक वर्ग था जो अत्यन्त सम्मानित और पवित्र वर्ग माना जाता था। प्रत्येक सैयद पैगम्बर के परिवार का वंशज होने के नाते साहसी सत्यवादी पवित्र और अन्य श्रेष्ठ गुणों से युक्त माना जाता था। सैयदों से छोटा मोटा काम कराना यदि पाप नहीं तो बिल्कुल अनुचित तो समझा ही जाता था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सैयदों को तंत्र–मंत्र का भी ज्ञान है इसलिये घमण्डी शासक भी उनके समक्ष विनीत होने से नहीं हिचकते थे। 1398 ई0 के तैमूरी आक्रमण के पश्चात दिल्ली के सिंहासन पर अपना राजवंश

भी स्थापित करने में सफल हो गये थे लेकिन वे शीघ्र ही असफल हो गये और उन्हें सत्ताच्युत होना पड़ा। राजनीतिक शक्ति के पतन होने के बावजूद भी उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा उसी तरह बरकरार रही और बाद के अफगान शासकों ने सैयदों को दी गयी रियायतों को बरकरार रखा। उदाहरणार्थ, एक सैयद के मामले में जो अत्यन्त ठोस आधार पर सरकारी राजस्व की खयानत करने का दोषी ठहराया गया और सिकन्दर लोदी के समक्ष प्रस्तुत किया गया था सुल्तान ने उसे मुक्त कर दिया यहां तक कि उसे बेईमानी से प्राप्त किया धन भी रखने की इजाजत दी गयी। सलीम शाह सूरी ने अति विनयशीलता प्रकट करने के लिये एक सैयद के जूते उठाकर ले जाने की इच्छा प्रकट की थी।

कहा जाता है कि उबैद कवि शैखुल इस्लाम शेख निजामुद्दीन का सेवक था। वह सर्वथा अमीर खुसरो का विरोध करता था। इस कारण शैखुल मसायख उससे सर्वदा खिन्न रहते थे। इसी बीच में एक हिन्दू आकर मुसलमान हो गया शेख निजामुद्दीन उसे शिक्षा दिया करते थे। एक दिन शेख ने उसे दो मिसवाक (दातून) दी। उस नव मुसलमान ने उबैद से पूछा कि मिसवाक का किस प्रकार प्रयोग किया जाये। उस दुष्ट ने कहा कि एक मुंह में करो और एक गुदा से। "वह इसी प्रकार किया करता था यहां तक कि उसकी गुदा सूज गयी। एक दिन वह शेखुल मसायख के पास बड़े दुखी अवस्था में पहुंचा और कहा कि हे शेख आपने मुझे दो मिसवाक प्रदान करने की कृपा की थी। उसमें एक जिसे मैं मुंह में करता

हूँ बडी अच्छी है और दूसरी जिसे मैं गुदा में करता हूँ बड़ी खराब है। शेख बड़े रुष्ट हुये। उन्होंने पूछा – "तुझे यह किसने सिखाया। उसने कहा उबैद कवि ने। तत्काल शेख ने कहा कि ये उबैद लकडी से खेला करता है। उसी समय से सभी समझने लगे कि उसे सूली पर चढ़ाया जायेगा।

शेरशाह द्वारा सुरक्षा की पवित्र भावनाओं और तदर्थ कुरान की शपथ के आधार पर पूरन मल और उसके चार हजार सैनिकों को उनके दुर्ग से बाहर निकाला कर उनकी हत्या कराने की घटनाओं को उल्माओं ने भारत के सम्पूर्ण इतिहास से कृष्टतम और अत्यन्त अपमान जनक इस कार्य को नियमानुकूल घोषित करते हुए एक फतवा जारी किया था।

सल्तनत का विशेष कृपापात्र और सहयोगी उल्मा वर्ग था और उल्मा वर्ग राज्य के प्रत्येक अंश को व्यापक रूप से प्रभावित करता था। उल्माओं ने नियमतः मुस्लिम कानून तर्कशास्त्र अरबी और सामान्य रूप से इस्लाम के धार्मिक साहित्य, तफसीर, हदीस, कलाम इत्यादि का व्यापक प्रशिक्षण लिया था। हांलाकि कुरान सामान्यतः उनकी स्थिति के बारे में यह जोर देती है कि वे ऐसे अलग वर्ग के है जो लोगों को सन्मार्ग पर लगाते है तथा उनके लिये कुरान में कोई प्राविधान नहीं किया गया है। शीघ्र ही लोगों के बीच मिथ्यापरम्परायें प्रचलित होने लगी। कहा जाने लगा कि पैगम्बर ने कहा कि उल्मा का सम्मान करो क्योंकि वे पैगम्बर के उत्तराधिकारी हैं जो उनका सम्मान करता है वह इस्लाम के पैगम्बर और अल्लाह

का सम्मान करता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मध्यकाल में धार्मिक क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार की काफी गुंजाइश थी जिसके उदाहरण यत्र–तत्र समकालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलते हैं। हांलाकि सल्तनत और मुगल काल में कतिपय शासकों जैसे अलाउद्दीन खिलजी और मुगलकाल में अकबर आदि शासकों ने धार्मिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार को रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन उनकी मृत्यु के पश्चात ही उनके सुधार निष्फल सिद्ध हुए।

सन्दर्भ -

1. मो0 जकी – अरब एकाउन्ट ऑफ इण्डिया, पृ0 78–85
2. प्रो0 ए0बी0 पाण्डेय – पूर्व मध्यकालीन भारत, पृ0 189–197
3. मो0 यासीन – सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, पृ0 144–148
4. पुरी, दास, चोपड़ा – भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इतिहास, पृ0 167–169
5. वही, पृ0 180–182
6. वी0एस0 भार्गव – राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण, पृ0 103–107
7. वही, पृ0 115–122
8. डॉ0 यूसुफ हुसैन – मध्ययुगीन प्रान्तीय संस्कृति की एक झलक, पृ0 209–212
9. वही, पृ0 220–227
10. वही, पृ0 229–232
11. अबुल फजल – अकबरनामा, पृ0 232–237
12. डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी – मुग़ल साम्राज्य का उत्थान एवं पतन, पृ0 207–212
13. वही, पृ0 228–231
14. जे0एन0 सरकार – औरंगज़ेब, पृ0 207–212

15. वही, पृ0 221–229

16. सैय्यद इकबाल अजहमद – औरंगजेब और शिवाजी, पृ0 220–227

17. वही, पृ0 229–235

18. डॉ0 अतहर अली – औरंगजेबकालीन मुग़ल उमरा वर्ग, पृ0 204–212

19. डॉ0 सतीश चन्द – उत्तर मुग़लकालीन भारत, पृ0 235–237

20. वही, पृ0 240–249

21. सर जे0एन0 सरकार – औरंगज़ेब, पृ0 242–249

22. डॉ0 सुरेश कुमार – द ग्रेट अकबर, 250–253

23. ए0 रशीद – सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिविल इण्डिया, पृ0 249–252

24. वही, पृ0 258–264

25. डॉ0 सतीश चन्द – उत्तर मुग़लकालीन भारत, पृ0 172–178

निष्कर्ष

मध्यकाल में भ्रष्टाचार
(1206—1707)

हिन्दुस्तान में सल्तनत सत्ता सन् 1206 में स्थापित हुई जिसकी नींव कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा डाली गई। इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक इल्तुतमिश को माना जाता है, जिसने 40 अमीरों के एक दल का गठन किया था, जिसे तुर्कानि चहलगानी कहा जाता था। इसी ने सर्वप्रथम गुलाम वंश में मुद्रा चलाने का कार्य किया था। प्रस्तुत शोध—निष्कर्ष के अन्तर्गत 1206 से 1707 तक के लगभग 500 वर्षों के इतिहास का प्रत्येक पहलुओं से अध्ययन करने के पश्चात् उन लुप्त तथ्यों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है जिनकी प्रासंगिकता वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतिहास का तात्पर्य उन उत्कृष्ट तत्वों का प्रकटीकरण है जो सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मूल्यों एवं जीवन के उच्च आदर्शों को निर्धारित कर विभिन्न व्यवस्थाओं को जन्म देते हैं। विभिन्न वंशो एवं व्यवस्थाओं के परिवर्तन से सामाजिक जीवन अप्रतिम रूप से प्रभावित होता रहा है। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत शोध—प्रबन्ध में विषयवस्तु को ध्यान में रखकर यथासम्भव उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं जो भ्रष्टाचार के स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं। हांलाकि समकालीन परिस्थितियों में उपरोक्त विषय पर अध-

ययन समाज में एक प्रदूषण की तरह व्याप्त था जिसे समय–समय पर विभिन्न शासकों द्वारा दूर करने का प्रयास किया गया परन्तु शासकों की निष्क्रियता या उनकी मृत्यु के उपरान्त पुनः उन बुराइयों ने समाज को दूषित करने का प्रयास किया।

शोध–प्रबन्ध को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है जिसमें संक्षिप्त इतिहास, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

ग्रंथ-सूची

प्राथमिक ग्रंथ

अब्दुल्ला – तारीख–ए–दाऊदी

अब्बास खाने सरवानी–तारीख–ए–शेरशाही, अनूदित बी.पी. अंबस्ठ, पटना 1974

अबुल फज़ल – आइन–ए–अकबरी भाग एक, दो, तीन, अनुवाद ब्लाकमैन

अब्दुल कादिर बदायूनी–मुन्तखबउत तवारीख, अनुवाद – रैकिंग, लो, हेग, पटना

बाबर – बाबरनामा – अनुवाद बेवरिज

भीमसेन – तारीख–ए–दिलकुशा, अनुवाद – जे0एन0 सरकार, मुंबई, 1972

जियाउद्दीन बरनी – तारीख–ए–फिरोजशाही

गुलबदन बेगम – हुमायूंनामा, अनुदित – बेवरिज

इनायतउल्ला खां – शाहजहांनामा, अनूदित – देसाई

ईश्वरदास नागर – फुतूहात–ए–आलमगीरी, अनूदित – तसनीम अहमद

ख्वन्दमीर – कानून–ए–हूमायूं, अनुवाद – रिज़वी

मिनहाज–उस–सिराज – तबकात–ए–नासिरी

नियामत उल्ला – तारीख–ए–खन–ए–जहानी

निजामुद्दीन अहमद – तबकात–ए–अकबरी

रिजकुल्लाह – वाकयात–ए–मुश्ताकी

अफीफ – तारीख–ए–फिरोजशाही

साकी मुस्ताद खां – मासीर–ए–आलमगीरी, अनुवाद – जे0एन0 सरकार, कलकत्ता।

लाहौरी – बादशाहनामा

जहांगीर – जहांगीरनामा

अंग्रेजी

अहमद, एम.बी.– द एडमिनस्ट्रिेशन आफ जस्टिस इन मेडिविल इंडिया।

आयंगर, एस.के.– साउथ इंडिया एण्ड हर मोहम्डन इनवेडर्स

बख्श, एस.खुदा– पालीटिक्स इन इस्लाम

बासू, के.के.– तारीख–ए–मुबारकशाही (अंग्रेजी अनुवाद)

दास गुप्ता, जे.एन.– बंगाल इन द सिक्सटींथ सेंचुरी

डे, यू.एन.– एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्ट्म आफ देलही सुल्तनत, द मुगल गवर्नमेंट

हबीब एण्ड निजामी– कंप्रेहंसिव आफ इण्डिया

लाल, के.एस.– हिस्ट्री आफ खिलजी

रिजवी, आगा मेंहदी हसन– राइज एंड फाल आफ मो. बिन तुगलक

वूलजले हेग– कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया–।।।

ईश्वरी प्रसाद– हिस्ट्री आफ द करोना तुर्क

बनर्जी, जामुनी मोहन– हिस्ट्री आफ फीरोज शाह तुगलक

जौहरी, आर.सी.– हिस्ट्री आफ फीरोज शाह तुगलक

लाल, डा. के.एस.– टिविलाइट आफ डेलही सुल्तनत

हरेन, जी.आर.– सेवन सिटीज आफ देहली

यासीन, मुहम्मद– सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया

लाल, के.एस.– ग्रोथ आफ मुस्लिम पापुलेशन इन मेडिकल इण्डिया

ब्रिग्स जे.– हिस्ट्री आफ द राइस आफ मोहम्मडन बाबर इन इण्डिया

रशीद ए.– सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिकल इण्डिया

लाल, के.एस.– हिस्ट्री आफ द खिल्लीज

निजामी, के.ए.– सम आस्पेक्ट आफ रिलीजन एंड पालिटिक्स इन द थर्टीन्थ सेंचुरी एंड कल्चर इन मेडिविल इंडिया

अशरफ, के.एम.– लाइफ एण्ड कंडीशन आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान

श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल– मेडिविल इंडियन कल्चर

जकी, मुहम्मद– अरब एकाउंट आफ इण्डिया ड्यूरिंग द 14 सेन्चुरी

सरकार, यदुनाथ– हिस्ट्री आफ औरंगजेब, हाउस आफ शिवाजी

प्रसाद, डा. राजेन्द्र– इण्डिया डिवाइडेड

मजूमदार, डा. आर.सी.– एन एडवास्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया

पाण्डेय, ए.बी.– फर्स्ट अफगान एंपायर

हलीम, अब्दुल– हिस्ट्री आफ लोदी सुल्तानस आफ डेलही एंड आगरा।

डे., यू.एन– सम आस्पेक्ट आफ मेडिकिल इंडियन हिस्ट्री

होडीवाला, एस.एच.– स्टडीज इन इंडो– मुस्लिम हिस्ट्री

हुसैन, ए.एम.– राइज एंड फाल आफ मुहम्मद बिन तुगलक

हुसैन, वहीद– द एडमिस्ट्रिेशन आफ जस्टिस ड्यूरिंग द मुस्लिम रूल इन इडिया

इब्न, हुसैन– सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ द मुगल इस्मायर

निगम, एस.बी.पी.– नोबिलिटी अंडर द सुल्तान्स आफ डेलही

पाण्डेय, ए.बी.– द फर्स्ट अफगान एंपायर इन इंडिया

कुरेशी, आई.एच.– द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सुल्तनत आफ डेलही

राय, एच.सी.– द डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दर्न इंडिया

सरन, पी.– स्टडीज इन मेडिविल इंडियन हिस्ट्री

सरन, पी.– इस्लामिक पालिसी

त्रिपाठी, आर.पी.– सम अस्पेक्ट आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन

वैद्य, सी.वी.– हिस्ट्री आफ मेडिविल हिन्दू इण्डिया

डब्ल्यू सी बैनेट– ए रिपोर्ट आन द फेमिली आफ द चीफ कलैन्स आफ रायबरेली डिस्ट्रिक लखनऊ– 1870

इलियट एण्ड डाउसन– हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड वाइट्स ऑन हिस्टोरियस– लन्दन– 1887

सरवूल्यले हेग– दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया वाल तृतीय (कैम्ब्रिज 1928)

मेंहदी हसन – द रेहला आफ इब्न बतूता, बड़ौदा, 1953

मिर्जा एम. डब्ल्यू– द लाइफ एण्ड वर्क्स आफ अमीरखुसरो, कलकत्ता 1935

मूरलैण्ड डब्लूय एच.– द एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया

प्रसाद ईश्वरी– हिस्ट्री आफ मेडिविल इण्डिया इलाहाबाद– 1940, हिस्ट्री आफ करौनातुर्क आफ इण्डिया, इलाहाबाद– 1936

कुरैशी आई एच.– द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सल्तनत आफ, देहली।

त्रिपाठी आर.पी.– सम एसपेक्ट आफ मुस्लिम एडमिस्ट्रेशन, इलाहाबाद 1936

जे. सुभान– सूफीज्म एंड इट्स सेंट्स

बैशम, ए.एल.– द कल्चरल हिस्ट्री आफ इण्डिया

हबीब, इरफान– कैम्ब्रिज इकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया।

चोपड़ा, पी.एन.– सोसायटी एण्ड कल्चर इन मुगल एज

हई, एस.अब्दुल– इंडिया ट्यूनिंग मुस्लिम रूल

रोस, सर ई. डेनीसन– हिन्दू मोहम्मडन फियेस्ट एण्ड फेस्टीवल

अजीज, अब्दुल – द मनसबदारी सिस्टम्स एंड द मुगल आर्मी, न्यू देहली, 1972

हलीम, अब्दुल–हिस्ट्री आफ द लोदी सुल्तान्स आफ देलही एंड आगरा, दिल्ली, 1974

राय, अनिरुद्ध – सम आस्पेक्ट्स आफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, दिल्ली, 1984

सुभान, बिशप – सूफीज्म : सेन्टस एंड श्राइन्स, लखनऊ, 1960

सरकार, जे0एन0 – द मुगल पालिटी, दिल्ली – 1984

सिद्दीकी, आई0एच0–सम आस्पेक्ट्स आफ अफगान डिस्पाटिज्म, अलीगढ़, 1969

कुरैशी, आई0एच0 – द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सल्तनत डेलही, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द मुगल इम्पायर

बनर्जी, जे0एम0 – हिस्ट्री आफ फिरोज़शाह तुगलक

अंसारी, एम0ए0 – द सोशल लाइफ आफ द मुगल इम्परररस, नयी दिल्ली, 1974

जौहरी, आर0सी0 – फिरोज तुगलक, आगरा, 1968

ताराचंद्र – इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम एन इंडियन कल्चर

देसाई, ए0जेड0 – इंडो इस्लामिक आर्कीटेक्चर, दिल्ली

हुसैन, यूसुफ – ग्लिंपसेज आफ मेडिकल इंडियन कल्चर, मुंबई, 1957

हिन्दी

रिजवी, अतहर अब्बास– आदि तुर्क कालीन भारत

रिजवी, अतहर अब्बास– उत्तर तैमूर कालीन भारत, भाग–1

रिजवी, अतहर अब्बास– तुगलक कालीन भारत, भाग–1

हबीबुल्लाह, ए.बी.एम.– भारत में मुस्लिम राज्य की बुनियाद

रिजवी, अतहर अब्बास– खिलजी कालीन भारत

इलियट एण्ड डाउजन– भारत का इतिहास (अनूदित)

सिन्हा, विपिन बिहारी– मध्यंकालीन भारत का इतिहास

प्रो. राधेश्याम– सल्तनत कालीन सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास

चौबे, डा. झारखण्ड– मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति

भार्गव, बी.एस.– राजस्थान के इतिहास का सर्वेक्षण

भारतीय विद्या भवन– दिल्ली सुल्तनत

शर्मा, मथुरा लाल– दिल्ली सुल्तनत

वर्मा, हरीश चन्द्र– मध्यकालीन भारत

मजूमदार, राय चौधरी, दत्त– मध्यकालीन भारत

मूरलैण्ड, डब्ल्यू. एय.– मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्थ

पुरी, दास चोपड़ा– भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास

श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल– भारत का इतिहास (1000 से 1707 तक)

पाण्डेय, अवध बिहारी– पूर्व मध्यकालीन भारत

ईश्वरी प्रसाद– भारतीय मध्ययुग का इतिहास (1200 से 1526 तक)

इलियट एण्ड डाउसन (अनूदित)– भारत का इतिहास खण्ड– 1, 2, 3, 4,

शर्मा, एस.आर.– भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास

लाल, किशोरी सरन– खिलजी वंश का इतिहास (1290 से 1320)

ठाकुर, केशव कुमार– एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान मूल लेखक– जेम्स टाड

भटनागर, वीरेन्द्र स्वरूप– सवाई जय सिंह

चन्द्र, डा. सतीश– उत्तर मुगल कालीन भारत

जौनपुरी– सैय्यद इकबाल अहमद– औरंगजेब तथा शिवाजी

सरकार, सर यदुनाथ– औरगंजेब के उपाख्यान

राय, निर्मल चन्द्र– महाराणा अजीत सिंह एवं उनका युग

गहलौत, जगदीश सिंह– कछवाहों का इतिहास

ओझा, गौरी शंकर हीराचन्द्र– राजपूताने का इतिहास, भाग– III

अली, डा0 अतहर अली– औरंगजेब कालीन मुगल उमरा वर्ग

माचवे, डा0 प्रभाकर– छत्रपति शिवजी

मुंशी देवी प्रसाद– औरंगजेब नामा

दन्त, श्यामल– वीर विनोद

रेऊ, पं. वि.प्र.– मारवाड़ का इतिहास

त्रिपाठी, आर.पी.– मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन

उपाध्याय, वासुदेव उपाध्याय– विजयनगर साम्राज्य का इतिहास

हुसैन, डा. युसूफ– मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की एक झलक

श्रीवास्तव – हरीशंकर – मुगल शासन प्रणाली

निगम, बी0पी0 – सूरवंश का इतिहास – दिल्ली, 1973